इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MSK-005
वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता

खंड

2

वेदाङ्ग

इकाई 7
शिक्षा एवं व्याकरण 121

इकाई 8
छन्द, निरुक्त एवं ज्योतिष 135

इकाई 9
कल्प 144

खण्ड 2 परिचय

MSK-005 'वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता' पाठ्यक्रम का यह द्वितीय खण्ड है। इस खण्ड में आप वेदाङ्गों का अध्ययन करेंगे। वेदाङ्ग छः हैं – शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष एवं कल्प। इस खण्ड में तीन इकाइयाँ हैं। खण्ड की 7वीं इकाई शिक्षा एवं व्याकरण वेदाङ्ग से सम्बन्धित है। शिक्षा को वेदपुरुष की नासिका कहा गया है। सभी वेदों के अपने-अपने शिक्षा ग्रन्थ हैं जिनका वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया गया है। व्याकरण वेदपुरुष का मुख है। इसके अन्तर्गत आप व्याकरणशास्त्र की परम्परा तथा चतुर्वेदों के प्रतिशाख्य ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे।

8वीं इकाई छन्द, निरुक्त एवं ज्योतिष से सम्बन्धित है। छन्द वेदपुरुष के पाद हैं। वेदमन्त्रों के उच्चारण के लिए हमें छन्द का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। यहाँ आप त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति आदि छन्दों के लक्षण का परिचय प्राप्त करेंगे। निरुक्त वेदपुरुष के कान हैं। इसमें पदों का निर्वचन किया गया है। ज्योतिष वेदपुरुष के नेत्र हैं। कालगणना ज्योतिषशास्त्र का मुख्य अंग है। इसके दो मुख्य ग्रन्थ है – आर्च ज्योतिष और याजुष् ज्योतिष। इस इकाई में आप इनके वर्ण्य-विषय का अध्ययन करेंगे। 9वीं इकाई कल्प वेदाङ्ग से सम्बन्धित है। कल्प वेदपुरुष के हाथ हैं। इस इकाई में आप चारों वेदों के कल्पसूत्रों के अन्तर्गत परिगणित श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र का अध्ययन करेंगे।

इस खण्ड की प्रत्येक इकाई में इकाई से सम्बन्धित कठिन शब्दावली दी गई है जिनका अर्थ जानना आपके लिए नितान्त अपेक्षित है, इन शब्दों का अर्थ जानकर आप अपने भाषिक सामर्थ्य में वृद्धि कर सकते हैं। इकाइयों के अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गयी है। आप इन पुस्तकों का अध्ययन कर सम्बन्धित विषय की और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ।

इकाई 7 शिक्षा एवं व्याकरण

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 शिक्षा ग्रन्थ

7.2.1 ऋग्वेद के शिक्षा ग्रन्थ

7.2.2 यजुर्वेद के शिक्षा ग्रन्थ

7.2.3 सामवेद के शिक्षा ग्रन्थ

7.2.4 अथर्ववेद के शिक्षा ग्रन्थ

7.3 व्याकरण ग्रन्थ

7.3.1 ऋग्वेद के व्याकरण ग्रन्थ

7.3.2 यजुर्वेद के व्याकरण ग्रन्थ

7.3.3 सामवेद के व्याकरण ग्रन्थ

7.3.4 अथर्ववेद के व्याकरण ग्रन्थ

7.4 सारांश

7.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.6 अभ्यास प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- वेदार्थ के अवबोध में वेदांगों की उपादेयता तथा उनके महत्त्व का परिज्ञान कर सकेंगे।
- शिक्षा वेदांग का परिचय एवं चारों वेदों के प्रमुख शिक्षा ग्रन्थों का परिचय कर सकेंगे।
- व्याकरण वेदांग का परिचय एवं चारों वेदों के प्रमुख व्याकरण ग्रन्थों का परिचय कर सकेंगे।
- शिक्षा एवं व्याकरण शास्त्रों के पारिभाषिक पदों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

भारतीय ज्ञानपरम्परा का यह स्पष्ट मत है कि ज्ञान-विज्ञान की समस्त धाराओं का आदिम स्रोत वेद हैं। 'सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति' यह उक्ति इसी तथ्य को पुष्ट करती है कि हमारे सभी शास्त्रों का बीज वेदराशि में ही निहित है। **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'** महर्षि आपस्तम्ब की इस परिभाषा के अनुसार यद्यपि वैदिक साहित्य के संहिता और ब्राह्मण इन दोनों भागों को वेद कहा जाता है तथापि लोकव्यवहार में वेद से तात्पर्य ऋग्वेदादि संहिता भाग से ही लिया जाता है। भारतीय आस्तिक परम्परा में वेद को अपौरुषेय माना गया है। मीमांसकों ने धर्म के ज्ञान में वेदों

का स्वतः प्रामाण्य स्वीकार किया है। धर्म में वेद का सर्वोच्च प्रामाण्य माना गया है इसलिए धर्मावबोध के लिए वेदार्थ का ज्ञान आवश्यक है और वेदार्थ के ज्ञान के लिए वेदांगों का अध्ययन अपरिहार्य है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार भारतीय आगम परम्परा में वेदों का वेदांगों सहित निष्कारण अध्ययन का निर्देश है– **ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च इति।** (महाभाष्य, पस्पशाह्निक, पृ.क्र. 10) इसी प्रकार स्वाध्यायोऽध्येतव्यः यह अध्ययनविधि भी सांगोपांग स्वशाखा के वेदाध्ययन का विधान करती है।

वेदाङ्गम्=वेदस्य अङ्गम् इस विग्रह के अनुसार वेद के अंगों को वेदांग कहा गया है। अंग शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है–**अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि** अर्थात् ज्ञान में उपकारक होना। शिक्षा आदि वेदांग भी वेदार्थ के ज्ञान में उपकारक होते हैं। भारतीय परम्परा में सर्वप्रथम मुण्डकोपनिषद् में अपरा विद्या के अन्तर्गत छहों वेदांगों का नामोल्लेख प्राप्त होता है–**तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।**(मुण्डकोपनिषद्, 1/5)। मुण्डकोपनिषद् के इस मन्त्र में अपरा विद्या के अन्तर्गत चार वेद और छः वेदांगों की गणना की गयी है।

7.2 शिक्षा ग्रन्थ

उपनिषदों में परिगणित एकादश विद्याएँ हों या अर्वाचीन शास्त्रों में परिगणित अष्टादश विद्याएँ, ये समस्त विद्याएँ शब्दों में ही निबद्ध हैं और शब्दों की संरचना वर्णों के अधीन है इसलिए शिक्षा ग्रन्थों से प्राप्त वर्णमाला (वर्णसमाम्नाय) का ज्ञान समस्त ज्ञानों की आधारभूत भूमिका का निर्माण करता है। भर्तृहरि के वाक्यपदीय के अनुसार संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्द से सम्बद्ध हुए बिना सम्भव हो–

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।। (वाक्यपदीयम् 1/114)

शब्द के साथ तादात्म्य करके ही संसार का समस्त ज्ञान भासित होता है। सभी शब्द वर्णात्मक हैं और वर्णमाला और उसके उच्चारण का ज्ञान प्रदान करने वाली विद्या शिक्षाशास्त्र है। शिक्षाशास्त्र के अध्ययन के बिना अन्य विद्याओं या ज्ञान का व्यवहारतः स्वरूप लाभ होना सम्भव नहीं है। यही शिक्षा का मौलिक महत्त्व है।

वैदिक काल से ही भारतीय मनीषा ने शिक्षा की उपादेयता को भली-भाँति समझ लिया था। कदाचित् यही कारण है कि वेदांगों में शिक्षा का इदम् प्रथमतया परिगणन किया गया है। भारतीय परम्परा में शिक्षा वेदांग को वेद पुरुष का घ्राण माना गया है जैसा कि पाणिनीयशिक्षा का प्रसिद्ध पद्य है–

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। (पाणिनीयशिक्षा, 41–42)

छन्द वेद के चरण हैं, कल्प वेद के हाथ हैं। ज्योतिष को वेदपुरुष के नेत्र तथा निरुक्त को श्रोत्र कहा गया है। शिक्षा वेद की नासिका तथा व्याकरण इसका मुख है। इस प्रकार अंगों सहित वेद का अध्ययन करने पर व्यक्ति ब्रह्मलोक (अर्थात् ज्ञानलोक) में

प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। आचार्य बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान' ने पाणिनीयशिक्षा के त्रिनयनभाष्य में कहा है कि शिक्षा के बिना कोई व्यक्ति वर्णनिष्पत्तिरूप गन्ध का भी ग्रहण नहीं कर सकता है–

शिक्षा वेदस्य घ्राणम्, तस्या अपुरस्कारेण वर्णनिष्पत्तिरूपो गन्धोऽपि न गृह्येत। (पाणिनीयशिक्षा,42 पर त्रिनयनभाष्य, पृ.सं.63)

वेदमन्त्रों के साधु उच्चारण के लिए शिक्षा वेदांग का ज्ञान अपरिहार्य है। शिक्षा वेदांग के प्रतिपाद्य विषयों को जानने के पूर्व हम यहाँ शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति पर संक्षेप में विचार करेंगे।

शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति – आचार्य सायण ने अपनी ऋग्वेदभाष्यभूमिका में शिक्षा शब्द का निर्वचन करते हुए कहा है कि–

स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा। (ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृ.सं. 49)

अर्थात् जहाँ स्वर, वर्ण आदि के उच्चारणभेदों का शिक्षण या उपदेश किया जाता है वह शास्त्र शिक्षा शब्द से कहा जाता है। वस्तुतः भारतीय ज्ञान परम्परा में वेद को अनुश्रव (अनु पश्चात् श्रूयते यः स अनुश्रवः अर्थात् जिसका श्रवण गुरु के उच्चारण के अनन्तर होता हो) कहा गया है। आशय यह है कि पारम्परिक अध्ययन प्रणाली में वेदाध्ययन गुरुमुखपूर्वक ही होता था। शिक्षा वेदांग के अर्थ में शिक्षा शब्द की प्रसिद्ध व्युत्पत्ति आचार्य सायण की सम्मति के अनुरूप शिक्ष्यते यया सा शिक्षा ही मानी गयी है। यह व्युत्पत्ति अभ्यास अर्थ वाली शिक्ष् धातु से निष्पन्न होती है। शिक्षा शब्द की एक अन्य निरुक्ति शक्तुमिच्छा शिक्षा है जो शक्लृ शक्तौ धातु से 'अ' प्रत्यय (अ प्रत्ययात् पा.सू. 3/3/102) करने पर निष्पन्न होती है जिसका तात्पर्य शक्ति की इच्छा या सकने की इच्छा है। शकितुमिच्छा शिक्षा यह भी एक निर्वचन है जिसके मूल में शक् मर्षणे धातु है। इस निरुक्ति के अनुसार शिक्षा शब्द का अर्थ सहने की इच्छा होता है। प्रसिद्ध विद्वान् मनीषी आचार्य बच्चूलाल अवस्थी जी ने उक्त तीनों निरुक्तियों का समन्वय करते हुए कहा है कि–

"वेदांग विद्या के अर्थ में 'शिक्षा' शब्द करण साधन है, अतः 'शिक्ष्यते यया सा शिक्षा' व्युत्पत्ति होगी। जिसके द्वारा अभ्यास अपनाया जाए, शक्ति प्राप्त करने की इच्छा की जाए और उच्चारण के गुणों की सहिष्णुता की इच्छा की जाए वह विद्या 'शिक्षा' है। शुद्ध उच्चारण की शक्ति अर्जित करने से पाठ्य गुणों की तितिक्षा चाही जाती है और तभी अभ्यास सार्थक बनता है। सर्वथा उच्चारण के दोषों को निरस्त कर गुणों का सन्निवेश ही शिक्षाशास्त्र का परम प्रयोजन है। इस सन्दर्भ में अभ्यासादि करने वाले को तो शिक्षक कहा ही जायेगा, साथ ही 'शिक्षा' शास्त्र के अध्येता एवं ज्ञाता को भी 'शिक्षक' कहा जाता है–**शिक्षामधीते वेद वा शिक्षकः – क्रमादिभ्यो वुन्।**

शिक्षा वेदांग के प्रतिपाद्य विषय – शिक्षा वेदांग के प्रमुख सिद्धान्तों का सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तिरीय–उपनिषद् की प्रथम वल्ली में प्राप्त होता है –

ॐ शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः। (तैत्तिरीयोपनिषद्, 1/2)

उक्त सन्दर्भ के अनुसार शिक्षा के छः प्रमुख विचारणीय विषय हैं– वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान। यहाँ वर्ण से स्वर एवं व्यञ्जन का ग्रहण होता है। स्वर से उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तथा मात्रा से ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत अभीष्ट हैं। बल से प्रयत्न, साम से पूर्वोत्तर मात्राओं के बीच में सन्धिसूचक मात्रा और सन्तान से उच्चारण या पाठ्य का प्रवाह अभिप्रेत है।

इकाई के आरम्भ में हमने यह जान लिया है कि शिक्षा वेदांग का एक प्रमुख प्रयोजन वेदमन्त्रों के सही उच्चारण को जानना है। वेदों की अनेक शाखाएँ हैं तथा प्रत्येक शाखा में वर्णों के उच्चारण के अपने-अपने नियम होते हैं। कभी-कभी तो एक ही मन्त्र जो वेद की अलग-अलग शाखाओं में पठित है उसके पाठ में उच्चारण का अत्यधिक अन्तर दृष्टिगोचर होता है, जैसे– प्रसिद्ध पुरुष सूक्त का पहले मन्त्र के आरम्भ में पठित 'सहस्रशीर्षा पुरुषाः' का शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा में उच्चारण 'शीरेखा पुरुखः' सुनाई देता है जबकि ऋग्वेदादि की अन्य शाखाओं में इसी अंश के उच्चारण में मूर्धन्य षकार का स्पष्ट उच्चारण किया जाता है। शुक्ल यजुर्वेद में रेफ और ऊष्मवर्णों से संयुक्त होने पर मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण 'ख' जैसा किया जाता है जबकि वेद की अन्य शाखाओं में विशुद्ध मूर्धन्य 'ष' उच्चरित किया जाता है। इसी उच्चारणभेद के कारण प्रत्येक वेद के अपने-अपने शिक्षा ग्रन्थ विकसित हुए हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस पाठ के अग्रिम अंश में दिया जा रहा है।

7.2.1 ऋग्वेद के शिक्षा ग्रन्थ

ऋग्वेद के शिक्षा ग्रन्थों में स्वराङ्कुशा शिक्षा, षोडशश्लोकी शिक्षा, शैशिरीय शिक्षा और अपिशाली शिक्षा के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जैसे शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता से सम्बद्ध याज्ञवल्क्य शिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा और माण्डव्य शिक्षा ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं या जैसे तैत्तिरीय संहिता से सम्बद्ध भरद्वाज शिक्षा उपलब्ध है और जैसे सामवेद की नारदीय शिक्षा या अथर्ववेद की माण्डूकी शिक्षा प्रसिद्ध है वैसे ऋग्वेद की किसी शाखा से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध कोई शिक्षा ग्रन्थ वर्तमान में प्रसिद्ध नहीं है। यद्यपि प्रचलित समस्त शिक्षा ग्रन्थों में सर्वाधिक प्रसिद्ध पाणिनीय शिक्षा को अनेक आचार्यों ने ऋग्वेद से सम्बद्ध स्वीकार किया है तथापि पाणिनीय शिक्षा ग्रन्थ की किसी एक वेद से सम्बद्धता पर कोई परिनिष्ठित मत नहीं है। ऋग्वेद के प्राचीन शिक्षा चिन्तन की दृष्टि से विचार करें तो ऋक् प्रातिशाख्य में शिक्षाशास्त्र के अनेक विषयों पर गम्भीर विवेचन प्राप्त होता है। वेद की विभिन्न शाखाओं के मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण की दृष्टि से तत्तत् शाखाओं के प्रातिशाख्य ग्रन्थों का ध्वनिविषयक अध्ययन के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस दृष्टि से इनका प्रातिशाख्य (शाखायां शाखायां प्रतिशाखम्, प्रतिशाखं भव प्रातिशाख्यम्।) यह नाम अन्वर्थ है। आचार्य उव्वट के अनुसार– शिक्षा छन्द और व्याकरण द्वारा सामान्य रूप से जिन नियमों का वर्णन कर दिया जाता है वे ही नियम उस वैदिकी शाखा में किस प्रकार से प्रवर्तित होंगे यही निरूपण करना प्रातिशाख्य ग्रन्थ का मूलभूत प्रयोजन है–

शिक्षा–च्छन्दो–व्याकरणैः सामान्येनोक्तलक्षणम् ।
तदेवमिह शाखायामिति शास्त्र–प्रयोजनम् ।।

(ऋग्वेदप्रातिशाख्य का उव्वटभाष्य, पृ.सं. 37)

समस्त प्रातिशाख्य ग्रन्थों में ऋक्प्रातिशाख्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। यह अठारह पटलों में विभक्त बृहदाकार ग्रन्थ है जिसमें ऋग्वेद की एकमात्र उपलब्ध शाकल शाखा की शैशिरीय उपशाखा का सांगोपांग विवेचन किया गया है। ऋक्प्रातिशाख्य के त्रयोदश पटल का नाम शिक्षा-पटलम् है। ऋक्प्रातिशाख्य में अनेक शिक्षाशास्त्रीय विषयों का निरूपण प्राप्त होता है।

पाणिनीय-शिक्षा – महर्षि पाणिनि द्वारा विरचित पाणिनीयशिक्षा को ऋक्प्रातिशाख्य का अनुगामी ग्रन्थ माना गया है। इस शिक्षा ग्रन्थ में त्रैस्वर्य से सम्बन्धित हस्तप्रयोगों को लेकर सामगान की रीति का विनियोग भी प्राप्त होता है। पारम्परिक मतानुसार इस शिक्षा ग्रन्थ के रचयिता महर्षि पाणिनि हैं। कतिपय आधुनिक विद्वान् प्रथम कारिका में आये 'पाणिनीयं मतं यथा' को देखकर इसे महर्षि पाणिनि की रचना नहीं मानते हैं। पाणिनीयशिक्षा 60 कारिकाओं का लघुकाय किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिक्षाग्रन्थ है। प्रतिपाद्य विषय की महनीयता एवं स्पष्टता की दृष्टि से यह सभी शिक्षा ग्रन्थों में सर्वाधिक समादृत है।

पाणिनीयशिक्षा के प्रमुख प्रतिपाद्य विषय – पाणिनीयशिक्षा की फलश्रुति के उपरान्त प्राप्त होने वाले एक श्लोक में विषय प्रतिपादन की दृष्टि से इस ग्रन्थ को ग्यारह भागों में विभक्त माना गया है –

अथ शिक्षामात्मोदात्तश्च हकारं स्वाराणां यथा ।
गीत्यचोऽस्पृष्टोदात्तं चाषस्तु शङ्कर एकादश।। (पाणिनीयशिक्षा पृ.सं. ८१)

यहाँ पाणिनीयशिक्षा के कतिपय प्रमुख विषयों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

वर्णों की गणना – पाणिनि के मतानुसार वैदिक और लौकिक संस्कृत वर्णमाला में 63 या 64 वर्ण होते हैं। पाणिनीयशिक्षा के अनुसार वर्णों की गणना निम्नानुसार है–

त्रिषष्टिश्चतुष्षष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा। (पाणिनीयशिक्षा, 3)

- स्वरा विंशतिरेकश्च – 21 स्वर
  अ इ उ ऋ के ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत भेद = 12
  ऌ (केवल ह्रस्व) = 1
  ए ऐ ओ औ के दीर्घ और प्लुत भेद = 8
- स्पर्शानां पञ्चविंशतिः – 25 स्पर्श
  क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न । प फ ब भ म ।
- यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ – यादि 8
  य र ल व ह ष श स
- चत्वारश्च यमाः स्मृताः – 4 यम
  पलिक्क्ँनी – यहाँ ककार का सरूप यम।
  चख्ख्ँनतुः – यहाँ खकार का सरूप यम।
  जग्ग्ँमतुः – यहाँ गकार का सरूप यम।
  जघ्घ्ँनतुः – यहाँ घकार का सरूप यम।
- अनुस्वारो विसर्गश्च – क≍पौ चापि पराश्रितौ – अनुस्वार आदि 4

अनुस्वार, विसर्ग, परवर्ती कवर्गाश्रित जिह्वामूलीय तथा परवर्ती पवर्गाश्रित उपध्मानीय।

- दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो – दुःस्पृष्ट 1 –ळ
  दुःस्पृष्ट वर्ण को मिलाकर वर्णों की कुल संख्या 63 हो जाती है।
- लृकारः प्लुत एव च – प्लुत लृकार 1
  प्लुत लृकार को मिला देने पर वर्णों की संख्या 64 हो जाती है।

स्वर 21, स्पर्श 25, यादि 8, यम 4, अनुस्वारादि 4, दुःस्पृष्ट 1 = 63, प्लुत लृकार = 64 पाणिनीय शिक्षा में वर्णमाला का क्रम एवं स्वरूप ऋग्वेदप्रातिशाख्य के अनुसार है।

वर्णोच्चारण प्रक्रिया – आत्मा बुद्धिरूप करण के द्वारा वाच्य अर्थों को संकलित कर उन्हें शब्दों द्वारा व्यक्त करने की इच्छा से मन को नियुक्त करता है। मन जठराग्नि को उद्वेलित करता है और जठराग्नि प्राणवायु को प्रेरित करता है। यह प्राणवायु उरःस्थल में मन्द्र स्वर, कण्ठ में मध्यम तथा मूर्धा विवर में तार स्वर को उत्पन्न करता है। यही प्राणवायु मूर्धा से अभिघात प्राप्त कर वर्णों को जन्म देता है। महर्षि पाणिनि द्वारा बतायी गयी यह वर्णोच्चारण की प्रक्रिया स्वनविज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वर्ण-विभाग – महर्षि पाणिनि ने स्वर, काल, स्थान, आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न के भेद से पञ्चविध वर्णविभाग बताया है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये तीन स्वर हैं। काल की दृष्टि से एकमात्रा वाला स्वर ह्रस्व, दो मात्रा वाला दीर्घ तथा तीन या अधिक मात्राकाल के उच्चारण वाला स्वर प्लुत होता है। व्यञ्जन का उच्चारण अर्द्धमात्राकाल का माना गया है। वेदमन्त्रों के उच्चारण में उदात्तादि स्वरों का प्रयोग यथावत् करना होता है।

पाणिनीयशिक्षा में वर्णों के आठ उच्चारणस्थान बताये गये हैं – 1. उरस् 2.कण्ठ 3. शिर 4.जिह्वामूल 5. दन्त 6. नासिका 7. ओष्ठ और 8. तालु।

पाणिनीयशिक्षा में अकारादि स्वरों और ऊष्म वर्णों का करण (आभ्यन्तर प्रयत्न) विवृत माना गया है। वैसे तो सभी स्वर विवृत प्रयत्न वाले हैं किन्तु इनमें भी 'एङ्' अर्थात् 'ए' और 'ओ' विवृततर तथा 'ऐच्' विवृततम माने गये हैं। हश् प्रत्याहार (ह् य् व् र् ल् ञ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द्) के अन्तर्गत आने वाले नादयुक्त घोष वर्णों का प्रयत्न संवार है तथा खर् प्रत्याहार (ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स्) के सभी वर्ण अघोष हैं।

उच्चारण में साधुता के उपाय तथा उत्तम पाठक के गुण – उच्चारण में साधुता का सम्पादन शिक्षा ग्रन्थों का विशेष प्रयोजन है। पाणिनीयशिक्षा में वर्णों के उच्चारण में शुद्धता के सम्पादन तथा दोष परिहार के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय बताये गये हैं, जैसे ह् र् श् ष् स् वर्णों के परे रहते नित्य अनुस्वार का उच्चारण अलाबु (तुमड़ी से निर्मित) वीणा के स्वर के समान करना चाहिए। अनुस्वार, विवृत्ति, विराम और संयुक्ताक्षर के पूर्ववर्ती स्वर के उच्चारण के समय दोनों ओष्ठों को अलग-अलग रखना चाहिए –

अलाबुवीणानिर्घोषो दन्तमूल्यः स्वराननु ।
अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च।।
अनुस्वारे विवृत्त्यां तु विरामे चाक्षरद्वये ।
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद् यत्रौकारवकारयोः।। (पाणिनीयशिक्षा, 23–24)

वर्णों के उच्चारण करते समय पाठक को हमेशा सावधान रहना चाहिए। महर्षि पाणिनि ने इस सन्दर्भ में अत्यन्त सुन्दर उपमान का प्रयोग करते हुए कहा है कि–

व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत्।। (पाणिनीयशिक्षा, 25)

जैसे बाघिन अपने बच्चों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय उन्हें अपने तीखे दाँतों से इतना सावधान होकर पकड़ती है कि न तो शिथिलता के कारण बच्चे गिरें और न ही तीखे दाँत उनके कोमल शरीर को क्षति पहुँचा सकें। वस्तुतः वर्णों का अस्पष्ट उच्चारण पात है और विकृत उच्चारण भेद है। पाठक को वर्णों के पतन और भेद से भयभीत रहते हुए सावधानीपूर्वक उच्चारण करना चाहिए। मधुरता, अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण, पदच्छेद, स्वर का सौष्ठव, धैर्य और लयसमर्थ होना, ये छः उत्तम पाठक के गुण माने गये हैं–

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः।।(पाणिनीयशिक्षा, ३३)

वर्णों का ठीक से सुनाई देना तथा सुनने में अच्छा लगना ही माधुर्य है। अक्षरव्यक्ति से तात्पर्य वर्णों के स्पष्ट उच्चारण से है। पदच्छेद से आशय उचित स्थान पर यति और अर्थानुसारी विराम से है। कण्ठस्वर का अनुनाद के सौष्ठव से सम्पन्न होना सुस्वरता है। पाठ में त्वरा का अभाव तथा विषयज्ञान से जन्य आत्मविश्वास से पाठक के धैर्य गुण का परिज्ञान होता है। धैर्य से पुष्ट लय सामर्थ्य भी उत्तम पाठक का गुण है।

जैसे उच्चारण में दोषों का अभाव गुण है वैसे ही गुणों के अभाव को उच्चारण में दोष माना जाता है। गीती अर्थात् गाकर पढने वाला, शीघ्री – शीघ्रपाठी, पढते समय सिर हिलाने वाला –शिरःकम्पी, पाठ्य के अर्थ को नहीं जानने वाला – अनर्थज्ञ और अल्पकण्ठ ये छः अधम पाठक माने गये हैं।

पाणिनीयशिक्षा के अन्तिम भाग में ग्रन्थकार ने शिक्षा सम्प्रदाय के मूल आचार्य के रूप में भगवान् शङ्कर का स्मरण किया है तथा इस विद्या को भगवान् शङ्कर द्वारा वेदों से सङ्ग्रहीत कर प्रदान करने के कारण शाङ्करी अभिख्या से मण्डित किया है –

शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद् दाक्षीपुत्राय धीमते।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः।। (पाणिनीयशिक्षा, 56)

उपर्युक्त तथ्यों के पर्यालोचन से हम यह जान सकते हैं कि पाणिनीयशिक्षा शिक्षावेदांग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि ग्रन्थ है, जिसका ज्ञान लोक और वेद दोनों के लिए उपादेय है। मात्र साठ कारिकाओं में महर्षि पाणिनि ने शिक्षा वेदांग के सम्पूर्ण विषयों का अत्यन्त सरलता से प्रतिपादन किया है। यही कारण है कि अन्य शिक्षा ग्रन्थों की अपेक्षा विद्वज्जगत् में इस ग्रन्थ को अधिक समादर प्राप्त हुआ है। न केवल संस्कृत भाषा की दृष्टि से अपितु आधुनिक स्वन-विज्ञान के सन्दर्भ में भी पाणिनीयशिक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

ऋग्वेद के अन्य शिक्षा ग्रन्थों में स्वराङ्कुशा शिक्षा, षोडशश्लोकी शिक्षा, शैशिरीय शिक्षा और अपिशाली शिक्षा का उल्लेख प्राप्त होता है।

स्वराङ्कुशा शिक्षा – इस शिक्षा ग्रन्थ के लेखक जयन्त स्वामी हैं। ग्रन्थ की पादटिप्पणी से ज्ञात होता है कि कुछ लोग किसी रावण नाम के व्यक्ति को इस शिक्षा ग्रन्थ का रचयिता मानते हैं। यह शिक्षा ग्रन्थ अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें उदात्तादि स्वरों के उच्चारण के साम्प्रदायिक ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ के मङ्गलाचरण के अन्तिम चरण में स्वयं रचनाकार ने **'वक्ष्येऽहं स्वरनिर्णयम्'** कहकर इस ग्रन्थ के वैदिक स्वरों के विषय में होने की सूचना दी है। प्रकाशित ग्रन्थ में यद्यपि 24 श्लोक प्राप्त होते हैं तथापि स्वराङ्कुशा शिक्षा के तेइसवें श्लोक में स्वयं रचनाकार ने इसे इक्कीस श्लोकों की रचना बताया है–

जयन्तस्वामिना प्रोक्ताः श्लोकानामेकविंशतिः ।
स्वराङ्कुशेति विख्याताबहयृचां स्वरसिद्धये ।। (स्वराङ्कुशा शिक्षा, 23)

षोडशश्लोकी शिक्षा – जैसा कि इस ग्रन्थ के नाम से स्पष्ट है कि यह मात्र सोलह श्लोकों का शिक्षा ग्रन्थ है जिसमें अत्यन्त संक्षेप में वर्णों की गणना और उनके उच्चारण स्थान बताये गये हैं। अनेक श्लोकों की आनुपूर्वी पाणिनीयशिक्षा से मिलती है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इस शिक्षा ग्रन्थ में लेखक ने पाणिनीयशिक्षा के वर्ण-गणना, उच्चारणस्थान आदि प्रमुख अंशों का संक्षेप में प्रस्तुतिकरण किया है।

7.2.2 यजुर्वेद के शिक्षा ग्रन्थ

शिक्षा ग्रन्थों की उपलब्धता की दृष्टि से यजुर्वेद सर्वाधिक समृद्ध है। शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध शिक्षा ग्रन्थों में याज्ञवल्क्य-शिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा और माण्डव्य शिक्षा प्रसिद्ध हैं। vedicheritage-gov- वेबसाइट पर शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध अठारह शिक्षा ग्रन्थों की सूची उपलब्ध है, जिनमें याज्ञवल्क्य शिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा, कात्यायिनी शिक्षा, पाराशरी शिक्षा, माण्डव्य शिक्षा, अमोघानन्दिनी शिक्षा, लघु अमोघानन्दिनी शिक्षा, माध्यन्दिनी शिक्षा, वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा, केशवी शिक्षा, हस्तस्वरप्रक्रिया शिक्षा, अवसाननिर्णय शिक्षा, स्वर-भक्ति-लक्षण-परिशिष्ट शिक्षा, क्रमसन्धान शिक्षा, मनस्वर शिक्षा, यजुर्विधान शिक्षा, स्वराष्टक शिक्षा और क्रमकारिका शिक्षा हैं। इन अठारह ग्रन्थों में हस्तस्वरप्रक्रिया और स्वर-भक्ति-लक्षण-परिशिष्ट शिक्षा छोड़कर शेष सभी प्रकाशित हैं। कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध ज्ञात शिक्षा ग्रन्थ सात हैं– भारद्वाज शिक्षा, व्यास शिक्षा, शम्भु शिक्षा, कौहालीय शिक्षा, सर्वसम्मत शिक्षा, अरण्य शिक्षा और सिद्धान्तशिक्षा। यहाँ हम यजुर्वेद से सम्बद्ध कतिपय प्रतिनिधि शिक्षा ग्रन्थों का परिचय प्राप्त करेंगे।

याज्ञवल्क्य-शिक्षा – शिक्षा ग्रन्थों में पाणिनीय शिक्षा के बाद यह सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ प्रायः 232 श्लोकों का बृहत्काय ग्रन्थ है। इसका सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता से है। इस शिक्षा ग्रन्थ में उदात्तादि वैदिक स्वरों का सोदाहरण वर्णन किया गया है। याज्ञवल्क्य शिक्षा का आरम्भ त्रैस्वर्यलक्षण से होता है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी गान्धर्व-वेद (संगीतशास्त्र) के षड्ज आदि सप्त स्वरों का समाहार वेद के उदात्तादि तीन स्वरों में माना है–

गान्धर्ववेदे ये प्रोक्ताः सप्त षड्जादयः स्वराः ।
त एव वेदे विज्ञेयास्त्रय उच्चादयः स्वराः।।
उच्चै निषादगान्धारौ नीचावृषभधैवतौ।
शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्ज-मध्यम-पञ्चमाः।। (याज्ञवल्क्यशिक्षा, 6–7)

पाणिनीयशिक्षा में भी ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है। त्रैस्वर्यलक्षण के बाद इस ग्रन्थ में आठ श्लोकों (श्लोक सं.10–17 तक) में मात्रा विचार किया गया है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अनेक उपमानों के सादृश्य से मात्राकाल को समझाने का प्रयत्न किया है? जैसे –

निमेषो मात्राकालः स्याद्विद्युत्कालस्तथा परे।
अक्षरात्तुल्ययोगाच्च मतिः स्यात्सोमशर्मणः।।
सूर्यरश्मिप्रतीकाशात् कणिका यत्र दृश्यते।
अणुत्वस्य तु सा मात्रा मात्रा च चतुराणवा।। (याज्ञवल्क्यशिक्षा, 10–11)

निमेष अर्थात् एक पलक गिरने का जो समय परिमाण है, वह एक मात्रा के बराबर होता है। कुछ आचार्यों के अनुसार यह विद्युत्काल (बिजली चमकने के समय) के तुल्य है। यहाँ मात्राकाल के अवधारण के लिए सादृश्यमात्र से संकेत किया गया है। उच्चारण के सम्बन्ध में मात्राकाल का परिज्ञान सम्प्रदाय से जानना चाहिए। सूर्यरश्मियों में छोटे से कण के दिखाई देने का समय एक अणुकाल या आणव है। चार आणवों का एक मात्राकाल माना गया है।

महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार उच्चारण करते समय मन में एक आणव, कण्ठ में दो आणव तथा जिह्वाग्र में तीन आणव होते हैं। श्रव्य बनकर जब अक्षर बाहर निकलता है तब चार आणवों की पूरी मात्रा होती है। एक मात्रा वाला स्वर ह्रस्व, दो मात्रा वाला दीर्घ तथा तीन मात्रा का स्वर प्लुत होता है। व्यञ्जन की आधी मात्रा मानी गयी है।

यजुर्वेद के सस्वर पाठ में हस्तचालन के सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य शिक्षा में महत्त्वपूर्ण निर्देश प्राप्त होते हैं यथा–

यथा वाणी तथा पाणी रिक्तं तु परिवर्जयेत् ।
यत्र यत्र स्थिता वाणी पाणिस्तत्रैव तिष्ठति ।।
यथा धनुष्यावितते शरे क्षिप्ते पुनर्गुणः ।
स्वस्थानं प्रतिपद्येत तद्वद्धस्तगतः स्वरः ।। (याज्ञवल्क्यशिक्षा, 46–47)

उदात्तादि स्वरों से समवेत वेद की वाणी के अनुरूप ही पाणि अर्थात् हाथ भी चलाया जाना चाहिए। त्रैस्वर्य से रिक्त स्थान को छोड़ देना चाहिए। जहाँ वाणी ठहरती है वहीं हाथ भी रुक जाना चाहिए। जिस प्रकार तने हुए धनुष से बाण छूटने पर प्रत्यञ्चा पुनः अपने स्थान पर आ जाती है उसी प्रकार हस्तगत स्वर भी जानना चाहिए। यहाँ सस्वर पाठ में हस्तचालन को समझाने के लिए अत्यन्त सुन्दर उपमान का प्रयोग किया गया है।

याज्ञवल्क्य शिक्षा में उत्तम वक्ता के गुण, उच्चारण के गुण-दोष, वृत्तिविचार, वर्ण-जाति-मात्रा-गोत्र-छन्द-दैवत, लोप-आगम-विकार-प्रकृतिभाव आदि सन्धियाँ, वर्णों के विभेद, उनका स्वरूप, उनमें परस्पर साम्य और वैषम्य इत्यादि अनेक विषयों का सम्यक् निरूपण किया गया है।

वासिष्ठी शिक्षा – यह शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता से सम्बद्ध शिक्षा ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में ऋक् तथा यजुष् की कुल संख्या तथा उनके विभाग को सविस्तार प्रतिपादित किया गया है। इस ग्रन्थ की पुष्पिका में भी इस शिक्षा को 'ऋग्यजुःविभागात्मिका' कहा गया है।

व्यास शिक्षा – यह कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध एक दीर्घकाय शिक्षा ग्रन्थ है। इसमें कुल अट्ठाइस प्रकरण हैं, जिनके नाम क्रमशः– सञ्ज्ञा, प्रग्रह, परिभाषा, दीर्घ, आगम, लोप, वैकृत, षत्व, णत्व, रेफ, विसर्जनीय सन्धि, यत्व, अच् सन्धि, अनैक्य, ऐक्य, स्वरधर्मस्वरूप, स्वर सन्धि, हस्तस्वरविन्यास, द्वित्व, पूर्वागम, द्वित्वनिषेध, अङ्गसंहिता, स्वरभक्ति, स्थानकरणप्रयत्न, प्लुत, ओष्ठ्य, कालनिर्णय और उच्चारणफल हैं। इस शिक्षाशास्त्रीय ग्रन्थ में व्याकरण विषयों का भी समाहार देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ के विपुलकाय होने का यह भी एक कारण है।

7.2.3 सामवेद के शिक्षा ग्रन्थ

सामवेद के तीन शिक्षा ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं – गौतमी शिक्षा, लोमशी शिक्षा और नारदीय शिक्षा। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

गौतमी शिक्षा – यह ग्रन्थ 33 व्यञ्जनों की गणना से आरम्भ होता है। इसमें व्यञ्जन वर्णों के तीन भेद बताये गये हैं– 1. स्पर्श, 2. अन्तस्थ और 3. ऊष्म। क से लेकर म तक 25 व्यञ्जनों को स्पर्श कहा गया है। य,र,ल,व ये चार अन्तस्थ और ह,श,ष,स ये चार ऊष्म वर्ण हैं। पच्चीस वर्गीय व्यञ्जनों में आरम्भ के चार व्यञ्जन क–च–ट–त–प, ख–छ–ठ–थ–फ, ग–ज–ड–द–ब और घ–झ–ढ–ध–भ ये कुल बीस अनन्त्य कहे गये हैं तथा अन्त्य वर्ण ङ–ञ–ण–न–म हैं। इस संक्षिप्त गद्यात्मक शिक्षाग्रन्थ में द्वयक्षर से लेकर सप्ताक्षरपर्यन्त संयोग को सोदाहरण समझाया गया है।

लोमशी शिक्षा – सामवेदीया लोमशी शिक्षा आठ खण्डों में विभक्त है। ग्रन्थ के अन्त में गौतमी और लोमशी शिक्षा के रचयिता का नाम युगल प्राक्किशोर पाठक दिया गया है। लोमशी शिक्षा में अनेक श्लोक पाणिनीय शिक्षा और याज्ञवल्क्य शिक्षा से यथावत् लिये गये हैं।

नारदीय शिक्षा – यह सामवेद से सम्बद्ध शिक्षा ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और उपादेय शिक्षा ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ पर शोभाकर भट्ट ने शिक्षाविवरण नाम से विस्तृत टीका लिखी है, जो श्रीपीताम्बरापीठ-संस्कृत-परिषद्, दतिया द्वारा प्रकाशित है। नारदीय शिक्षा में दो प्रपाठक हैं तथा प्रत्येक प्रपाठक आठ कण्डिकाओं में विभक्त है। इस ग्रन्थ में कुल 238 श्लोक हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में स्वर वर्ण आदि की शुद्धि की आवश्यकता प्रतिपादित की गई है। सामगान में स्वरों का विशेष महत्त्व होने के कारण इस शिक्षा ग्रन्थ में स्वरों के चरित पर विशेष विमर्श किया गया है।

7.2.4 अथर्ववेद के शिक्षा ग्रन्थ

माण्डूकी शिक्षा – अथर्ववेद से सम्बद्ध एकमात्र शिक्षाग्रन्थ माण्डूकी शिक्षा है। इसमें कुल 179 श्लोक पढे गये हैं। अथर्ववेदीय मन्त्रों के स्वर वर्ण आदि के परिज्ञान की दृष्टि से यह ग्रन्थ उपादेय है। इस शिक्षा ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक में मण्डूकेन कृतां शिक्षां विदुषां बुद्धिदीपिनीम् इस पंक्ति से पता चलता है कि इसके प्रणेता आचार्य का नाम मण्डूक है। इस ग्रन्थ में वृत्ति, स्वर, अनुस्वार, उच्चारण के गुण-दोष, हस्तचालन, उत्तमादि पाठकों के गुण, मन्त्रों के विशेष उच्चारण सन्दर्भ, विवृत्ति, षत्व, णत्व, रक्तवर्ण, लोप, आगम, मात्रा, अवग्रह इत्यादि अनेक शिक्षाशास्त्रीय विषयों का गंभीर विमर्श किया गया है।

7.3 व्याकरण ग्रन्थ

इस इकाई के आरम्भ में हमने शिक्षा वेदाङ्ग के अन्तर्गत वेदाङ्गों का स्वरूप और प्रयोजन जान लिया है। पाणिनीयशिक्षा में व्याकरण को वेदपुरुष का मुख कहा गया है यह हम जान चुके हैं। इस शीर्षक के अन्तर्गत हम वेदाङ्गों में प्रमुख व्याकरण का स्वरूप तथा व्याकरण के ग्रन्थों के विषय में जानेंगे।

व्याकरण – व्याकरण शब्द 'वि' और 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु (डुकृञ्–करणे) से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। **'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधुशब्दा अस्मिन् अनेनेति वा'** दुर्गादास आचार्य की इस निरुक्ति के अनुसार जिस शास्त्र के द्वारा साधु शब्दों के प्रकृति–प्रत्यय का विवेचन किया जाता है, उसे व्याकरण कहा जाता है। पदशास्त्र या शब्दशास्त्र इसके नामान्तर हैं। इस शास्त्र को जानने वाले को वैयाकरण, पदज्ञ या शाब्दिक कहा जाता है।

व्याकरण शास्त्र की परम्परा – व्याकरण शास्त्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। अनेक वेद मन्त्रों में व्याकरण शास्त्र के महत्त्व का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है, इससे यह ज्ञात होता है कि संहिता काल में ही व्याकरण शास्त्र रूप में विकसित होने लगा था। महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण शास्त्र के अवान्तर प्रयोजन के निरूपण के सन्दर्भ में ऋग्वेद के चार मन्त्रों को उद्धृत किया है। स्थाली-पुलाक-न्याय से यहाँ दसवें अवान्तर प्रयोजन में पठित मन्त्र को देखिए–

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।।

(ऋग्वेद,10/7/1/2)

जिस प्रकार चालनी से सत्तू चालकर शुद्ध कर लिया जाता है उसी प्रकार धीर जन बुद्धि द्वारा वाणी को शुद्ध कर साधु शब्दों का प्रयोग करते हैं। जिन्हें शब्दब्रह्म का संज्ञान (भली-भाँति ज्ञान) हो जाता है ऐसे धीर (वैयाकरण) लोगों की वाणी में कल्याणमयी लक्ष्मी वास करती है।

गोपथ, एतरेय आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी व्याकरण के कतिपय पारिभाषिक पदों का प्रयोग दिखाई देता है। यद्यपि संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों का उद्देश्य व्याकरण का निर्वचन नहीं था। बाद में प्रातिशाख्य ग्रन्थों में व्याकरण का शास्त्रीयस्वरूप अभिव्यक्त हुआ। वर्तमान में प्रचलित व्याकरणों में पाणिनीय व्याकरण ही प्राचीनतम और वेदांग का प्रतिनिधि व्याकरण माना जाता है। यद्यपि पाणिनि से पूर्व भी व्याकरण की परम्परा विद्यमान थी। महर्षि शाकटायन के ऋक्तन्त्र में उल्लेख है कि अक्षर-समाम्नाय का सर्वप्रथम उपदेश ब्रह्मा ने बृहस्पति को किया, बृहस्पति ने इन्द्र को, इन्द्र ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने ऋषियों को तथा ऋषियों ने ब्राह्मणों को इस विद्या का उपदेश दिया। तैत्तिरीय संहिता का एक सन्दर्भ (तैत्तिरीय संहिता –6/4/7/3) जो कि सर्वाधिक प्राचीन है, के अनुसार पूर्व से अव्याकृत वाक् को सर्वप्रथम इन्द्र ने व्याकृत किया था। पाणिनीय व्याकरण से पूर्व ऐन्द्र व्याकरण की सत्ता में अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य के पस्पशाह्निक में एक प्राचीन सन्दर्भ दिया है जिसमें बृहस्पति द्वारा एक हजार दिव्य वर्षों तक इन्द्र को प्रतिपद शब्दों के पारायण कराने का उल्लेख प्राप्त होता है–

एवं हि श्रूयते – "बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम"।

इन्द्र के अतिरिक्त पाणिनि के पूर्ववर्ती वैयाकरणों में भागुरि, चारायण, व्याडि, आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, स्फोटायन आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं। पाणिनीय व्याकरण को त्रिमुनि-व्याकरण भी कहा जाता है। अष्टाध्यायी सूत्र ग्रन्थ के प्रणेता महर्षि पाणिनि, वार्तिककार कात्यायन (वररुचि) और महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ये व्याकरण के त्रिमुनि हैं। अपनी वैज्ञानिकता, सारगर्भिता और प्रतिपाद्य विषय की स्पष्टता के कारण महर्षि पाणिनि का सूत्रग्रन्थ अष्टाध्यायी सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। कात्यायन का वार्तिक ग्रन्थ अष्टाध्यायी में क्वचित् संशोधन बताता है और कहीं भाषिक नियमों का संकोच या विस्तार करता है। पतञ्जलि का महाभाष्य आपाततः प्रतीत होने वाले विरोधों का परिहार कर समन्वय का प्रतिपादन करते हुए इस व्याकरण को पूर्णता प्रदान करता है।

व्याकरण शास्त्र की परम्परा में निरन्तर उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता रहा है। 'उत्तरोत्तरमुनीनां प्रामाण्यम्' यह उक्ति अत्यन्त प्रसिद्ध है। व्याकरण के प्रक्रिया ग्रन्थों में भट्टोजिदीक्षित की वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी और दार्शनिक ग्रन्थों में भर्तृहरि का वाक्यपदीयम् अग्रगण्य है।

वैदिक व्याकरण के प्रतिनिधि-प्रातिशाख्य ग्रन्थ – प्रातिशाख्य ग्रन्थों में वेद की तत्तत् शाखाओं से सम्बद्ध व्याकरणादि विषयों का निरूपण प्राप्त होता है। इस इकाई के आरम्भ में 'ऋग्वेद के शिक्षा ग्रन्थ' इस उपशीर्षक (7.2.1) के अन्तर्गत हमने प्रातिशाख्य ग्रन्थों की निरुक्ति और उनके प्रयोजन को समझ लिया है। वेदों की अनेक शाखाएँ होने के कारण प्रातिशाख्य ग्रन्थों की संख्या भी अधिक है। यहाँ वेदों के उपलब्ध प्रातिशाख्य ग्रन्थों का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है –

7.3.1 ऋग्वेद के व्याकरण ग्रन्थ

हम इस तथ्य को पहले ही जान चुके हैं प्रातिशाख्य ग्रन्थों में वैदिक व्याकरण के साथ ही शिक्षा एवं छन्द वेदांग के विषयों का भी समाहार होता है। महर्षि शौनक द्वारा विरचित ऋग्वेदप्रातिशाख्य प्रातिशाख्य ग्रन्थों में प्राचीनतम और महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसमें कुल अठारह पटल हैं। आरम्भ के बारह पटलों में सञ्ज्ञा, परिभाषा, संहिता, स्वर, सन्धि, नति, ध्वन्यागम, प्लुति, क्रम, क्रमहेतु, सीमा आदि व्याकरण और वेदपाठ से सम्बद्ध विषयों का निरूपण है। तेरहवें और चौदहवें पटल में शिक्षाशास्त्रीय विषय, पन्द्रहवें पटल में वेदाध्ययन प्रक्रिया तथा अन्तिम तीन पटलों में छन्दःशास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रातिशाख्य पर आचार्य उव्वट का भाष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रारम्भ के दो वर्गों पर विष्णुमित्र की वृत्ति भी प्राप्त होती है।

7.3.2 यजुर्वेद के व्याकरण ग्रन्थ

शुक्ल यजुर्वेद के वाजसनेयि–प्रातिशाख्य के रचयिता महर्षि कात्यायन हैं। यह आठ अध्यायों में विभक्त है। इसमें मुख्य रूप से वर्ण, स्वर, सन्धि, पदपाठ, क्रमपाठ आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रातिशाख्य के अनेक सूत्र तथा पारिभाषिक शब्द पाणिनीय व्याकरण में यथावत् प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रातिशाख्य पर उव्वट का मातृवेद तथा अनन्त भट्ट का पदार्थ-प्रकाशक, ये दो भाष्य उपलब्ध होते हैं।

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य दो प्रश्नों (खण्डों) में विभक्त है। प्रत्येक खण्ड में बारह अध्याय हैं। प्रथम प्रश्न में वर्ण-समाम्नाय, शब्दस्थान, शब्दोत्पत्ति, स्वर-विसर्ग सन्धियाँ आदि वर्णित हैं तथा द्वितीय प्रश्न में णत्वविधान, अनुस्वार-अनुनासिक भेद, स्वरितभेद, संहिता-स्वरूप आदि विषयों का निरूपण किया गया है। इस प्रातिशाख्य पर तीन व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध हैं– 1. माहिषेय विरचित 'पदक्रमसदन' भाष्य, 2. सोमयार्य का त्रिभाष्यरत्न और 3. गोपाल यज्वा का वैदिकाभरण। इन तीनों भाष्यों में पदक्रमसदन सर्वाधिक प्राचीन है।

7.3.3 सामवेद के व्याकरण ग्रन्थ

सामवेद के दो प्रातिशाख्य प्रकाशित रूप में प्राप्त होते हैं। पुष्पऋषि द्वारा प्रणीत पुष्पसूत्र सामवेद का प्रसिद्ध प्रातिशाख्य है। यह ग्रन्थ अंग्रेजी अनुवाद सहित इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली द्वारा दो भागों में प्रकाशित है। इसमें कुल दस प्रपाठक हैं। इस सामवेदीय प्रातिशाख्य में गानसंहिता से सम्बद्ध विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

ऋक्तन्त्र सामवेद की कौथुम शाखा का प्रातिशाख्य है। गोभिल-गृह्यसूत्र के व्याख्याकार भट्टनारायण इसे राणायनीय शाखा से सम्बद्ध मानते हैं। इस ग्रन्थ की पुष्पिका में इसका नाम ऋक्तन्त्रव्याकरण है। यह सूत्रात्मक ग्रन्थ पाँच प्रपाठकों में विभक्त है। इसके रचयिता शाकटायन मुनि हैं। इनके सिद्धान्तों का उल्लेख महर्षि यास्क के निरुक्त तथा महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी मिलता है ।

7.3.4 अथर्ववेद के व्याकरण ग्रन्थ

अथर्ववेद के भी दो प्रातिशाख्य उपलब्ध होते हैं।

1. **शौनकीया चतुरध्यायिका (कौत्सव्याकरण)** – यह सबसे प्राचीन अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के ग्रन्थ वैदिक साहित्य और संस्कृति के अनुसार अमेरिकन विद्वान् डॉ व्हिट्नी ने 1862 ई. में इसे प्रकाशित किया था। इस ग्रन्थ का यह नाम भी डॉ व्हिट्नी को उपलब्ध प्रति में शौनक का नाम निर्दिष्ट होने के कारण प्रचलित हो गया। वाराणसी के सरस्वतीभवन में सुरक्षित पाण्डुलिपि की पुष्पिका में इसका नाम कौत्स-व्याकरण है। स्पष्ट है कि इसके प्रणेता कौत्स नामक विद्वान् है।

2. **अथर्ववेद प्रातिशाख्य** – यह स्वल्पकाय ग्रन्थ अथर्ववेद सम्बन्धी कतिपय विषयों का निरूपण करता है। इसमें सन्धि, स्वर तथा पदपाठ के नियम बताये गये हैं।

7.4 सारांश

वेद हमारी ज्ञान-विज्ञान परम्परा के आदिम स्रोत हैं। वेदार्थ के परिज्ञान के लिए वेदाङ्गों का ज्ञान अपरिहार्य है। वेद से आरम्भ भारतीय ज्ञान परम्परा में उत्तरोत्तर परिष्कार होता रहा है जिसमें वेदांगों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भाषाशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से शिक्षा और व्याकरण वेदांग का परिशीलन लाभप्रद है। शिक्षा ग्रन्थों में वर्णित विषय वेद और लोक दोनों के लिए समान रूप से उपकारक है। वैदिक और लौकिक संस्कृत की वर्णमाला का बोध शिक्षा-ग्रन्थों से प्राप्त होता है। वर्णोच्चारण,

वर्णोत्पत्तिप्रक्रिया, वर्णों के उच्चारणस्थान एवं प्रयत्न, उच्चारण के गुण-दोष आदि शिक्षाग्रन्थों के मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं।

वेदांगों में व्याकरण को प्रधान (मुखस्थानीय मुख्य) माना गया है। व्याकरण के अध्ययन से साधु शब्दों का परिज्ञान होता है। व्याकरणशास्त्र की परम्परा वैदिक काल से अविच्छिन्न रही है। वेदांग-व्याकरण का प्रतिनिधि पाणिनीय व्याकरण है जिसे हम त्रिमुनि-व्याकरण भी कहते हैं। वेदों की तत्तत् शाखाओं के प्रातिशाख्य ग्रन्थों में उन शाखाओं से सम्बद्ध शिक्षा, व्याकरण और छन्दःशास्त्रीय विषयों के साथ ही वेदपाठ के नियमों का भी वर्णन किया गया है।

7.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अष्टाध्यायी, पाणिनि, रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
- ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्, उव्वटभाष्य सहित, अनुवादक– डॉ. वीरेन्द्र कुमार वर्मा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
- पाणिनीय शिक्षा, त्रिनयनभाष्य सहित पाणिनि, भाष्यकार– बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान' कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन
- महाभाष्यम्, पतञ्जलि, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
- वैदिक साहित्य और संस्कृति, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी
- वैदिक साहित्य और संस्कृति, कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
- याज्ञवल्क्यशिक्षा, याज्ञवल्क्य, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
- वैयाकरण–सिद्धान्तकौमुदी, भट्टोजिदीक्षित, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

7.6 अभ्यास प्रश्न

1. वेदार्थ के परिज्ञान में वेदांगों की उपयोगिता का वर्णन कीजिए।
2. शिक्षा वेदांग का प्रयोजन क्या है ?
3. ऋग्वेद के प्रमुख शिक्षा ग्रन्थों का परिचय दीजिए।
4. वेदांगों में व्याकरण का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।

इकाई 8 छन्द, निरुक्त एवं ज्योतिष

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 छन्द

8.3 निरुक्त

8.4 ज्योतिष

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.8 अभ्यास प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वेदार्थ ज्ञान के लिये निरुक्त की उपादेयता को जान सकेंगे।
- वेद मन्त्रों की शुद्धता और उनके लयबद्ध ज्ञान के लिये छन्दशास्त्र की भूमिका का निर्धारण कर सकेंगे।
- प्रमुख छन्दों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- वैदिक ज्योतिष शास्त्र का काल गणना के विषय में महत्त्व को जान सकेंगे।
- ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार वेदों को अपौरुषेय, अनादि और शाश्वत माना गया है। इस मत के अनुसार समाधिष्ठ ऋषि के शुद्ध अन्तःकरण में मन्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ। वे मन्त्रों के दृष्टामात्र थे सृष्टामात्र नहीं–**"ऋषयो मन्त्रदृष्टारः।"** कदाचित् इसलिये मैक्डानल ने वैदिक साहित्य के इतिहास में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि –"मानव मस्तिक के प्राचीनतम साहित्य के रूप में हमारे पास वैदिक साहित्य उपलब्ध है।" इस प्रकार वैदिक वाङ्मय मानवीय सभ्यता तथा मनीषा का वह वाग् गुम्फि पुष्प है जिसमें सौन्दर्य अभिव्यक्ति और प्रकृति से विराट् साक्षात्कार की अनुभूति होती है।

वेदों की रचना का अर्थ है ब्रह्म के निःश्वासभूत मन्त्रों का ध्यानरूपी नेत्रों से साक्षात्कार। दीर्घकाल तक गुरु-शिष्य परम्परा से उन मन्त्रों का मौखिक रूप से आदान-प्रदान होता रहा है, इसी कारण वेद को 'श्रुति' भी कहा गया है, क्योंकि वेदाध्ययन "गुरुमुखेच्चारणानुच्चारण विधि" से किया जाता है अर्थात् गुरु ने जैसा शब्द उच्चारण किया वैसा ही शिष्य ने सुना और सुनने के पश्चात् शिष्य ने वैसा ही उच्चारण किया इसलिए इसे 'श्रुति' भी कहते हैं। वैदिक वाङ्मय में अपरर्ण्य विषय एवं

पुरोहितों {होता (ऋक्), अध्वर्यु (यजु), उद्गाता (साम), ब्रह्मा (अथर्व} की आवश्यकतानुसार इन मन्त्रों की ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद संहिता की शाखा सहित उपस्थिति शाश्वत रूप से प्रवाहित है।

इस प्रकार वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि साहित्य का विकास हुआ। ये सभी वैदिक साहित्य कहलाये जिन्हें आधार मानकर भारतीय जीवन दर्शन में अनेक प्रकार की साधना एवं तप के स्रोत के रूप में अनेक यागादिक प्रक्रियाओं का विकास हुआ जिनसे ऐहलौकिक एवं पारलौकिक सुखों की कामना की गई।

सुसमृद्ध अंगों-उपांगों सहित वैदिक साहित्य में उपस्थित विषयों की बहुविध प्रकृति का निरन्तर साक्षात्कार होता रहा है ऋग्वेद में प्राकृतिक शक्तियों का संस्तवन तथा लौकिक सन्दर्भों का उल्लेख, दार्शनिक तत्त्वों का बीजारोपण जैसे पक्ष हैं। यजुर्वेद कर्मकाण्डबहुल प्रयोगपरक संहिता है जिसमें अग्निचयन से लेकर अश्वमेघ आदि के प्रयोग और उसके निमित्त मन्त्रों का विनियोग है, जिसमें वैदिक अनुष्ठानों में व्यवहृत बहुसंख्यक प्रसंग अभिनयमूलक हैं।

सामवेद मन्त्रों की सांगीतिक कलात्मक प्रस्तुति की संहिता है। अथर्ववेद राज्यकर्म-स्त्रीकर्म-शान्तिक-पौष्टिक कर्म-चिकित्सा विधान-अभिचार कर्म आदि तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण वेद हैं जो लोकयात्रा एवं आध्यात्म का पाथेय सिद्ध है।

वैदिक संहिताओं के प्रतिपाद्य के आधार पर उपवेदों का अस्तित्व भारतीय साहित्य का अभिराम पक्ष है, यथा– ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद तथा अथर्ववेद का इतिहास वेद, सर्पवेद, पिशाचवेद आदि उपवेद हैं।

अंग से समन्वित वैदिक साहित्य में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष का समावेश किया जाता है। इस वैदिक साहित्य का मूल रूप विकृत न हो जाए इसी उद्देश्य से इसके शुद्ध अध्ययन एवं अर्थनिर्धारण के लिए इन षड्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) का भी निर्माण मूलरूप से ब्रह्मा द्वारा सूत्र रूप में किया गया। बाद में तत्तद् विषयों के ऋषियों द्वारा विकसित किया गया। इन छः वेदाङ्गों के सम्यग् ज्ञान द्वारा ही वेदों के शुद्ध उच्चारण के लिए वर्णोच्चारण विषयक शिक्षा के नियम का अध्ययन आवश्यक है। यागादि विधि-विधान निर्धारण कल्प या तज्जन्य मीमांसाशास्त्र द्वारा सम्भव है। व्याकरण शब्दापशब्द विवेक द्वारा वेदार्थ निर्धारण में सहायक है। निरुक्त वेद के पारिभाषिक शब्दों के व्यावहारिक अर्थ का निर्देश करता है। ज्योतिष यागादिक प्रक्रिया के काल-निर्धारण विषयक, शुद्धता एवं औचित्य का ज्ञान कराता है। वेद के मूल रूप को सुरक्षित रखने के लिये वेदाङ्गों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है तथा इसके द्वारा पाठक्रम का शुद्धतापूर्वक निर्धारण हो जाता है। इस प्रकार सभी शास्त्रों एवं विश्व प्रक्रिया के आदि स्रोत वेदों की दीर्घकाल तथा उसके मूल रूप में सुरक्षा वेदाङ्गों के अध्ययन द्वारा ही सम्भव है। अतः वेदों के संरक्षण के लिए वेदाङ्गों की उपादेयता सिद्ध है।

8.2 छन्द

छन्द वेदाङ्ग को वेदपुरुष के पाद (पैर) के रूप में स्वीकार किया गया है। इसकी मधुरिमा दुःखार्त, शोकार्त एवं श्रमार्त मानव के अन्तःकरण की व्यथा को दूर करने का कार्य करती है और इससे चित्त की स्फीति होती है। इसकी निष्पत्ति **"छति संवरणे"** धातु से असुन् प्रत्यय करने पर होती है।

वेदमन्त्रों के उच्चारणों के निमित्त छन्दों का ज्ञान होना परमावश्यक है। किसी मन्त्र की फलवत्ता तभी हो सकती है, जब उसके मन्त्रदृष्टा ऋषि तथा वर्णित देवता के साथ-साथ हम उसके छन्द से भी परिचित हों। इसके महत्त्व को स्वीकार करते हुए कुछ विद्वानों ने अपना विचार व्यक्त किया है –

1) छन्दांसि छादनात् – यास्क, नि. 7/9

2) नाच्छन्दसि वागुच्चरति – दुर्गाचार्य, नि. 7/2

3) छन्दहीनो न शब्दोऽस्ति, न छन्दः शब्दवर्जितम् – भरतमुनि, नाट्यशास्त्र 14/45

4) छन्दः पादौ तु वेदस्य – पाणिनीय शिक्षा

जिस प्रकार कोई मनुष्य पैर का आधार बनाकर शरीर धारण करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करता है उसी प्रकार परमेश्वर के काव्य रूप सभी वेद भी गायत्र्यादि विविध छन्दों में उपनिबद्ध हैं। इस आधार पर मन्त्रों की पादव्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था के कारण से छन्द शास्त्र की वेदार्थ ज्ञान में उपयोगिता है। अतः वेदमन्त्रों की शुद्धता और उनके लयबद्ध ज्ञान के लिए छन्दशास्त्र की आवश्यकता प्रतीत हुई। यदि छन्दशास्त्र का ज्ञान नहीं है तो मन्त्रों का समुचित फल प्राप्त नहीं होगा। कात्यायन ने अपनी सर्वामुक्तमणी में अक्षर परिमाण को ही छन्द का लक्षण बतलाया है –**"यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः।"**अर्थात् जहाँ अक्षरों की संख्या निश्चित होती है, उसे छन्द कहते हैं।

वेद मन्त्रों के साथ छन्दों का घनिष्ठ सम्बन्ध है –**"छन्दयति पृणाति रोचते इति छन्दः"**

अर्थात् जिस वाणी को सुनते ही मन आह्लादित हो जाता है, वह छन्दोमयी वाणी ही छन्द है।

यास्काचार्य ने छन्द शब्द की व्युत्पत्ति छद् (ढाँकना), आच्छादने आवरणे से बताई है। जो वेद को आसुरी हस्तक्षेप से सुरक्षित रखता है, वह छन्द है। यह छन्द यज्ञादि कर्मों एवं वैदिक अनुष्ठानों को आसुरी शक्तियों की विघ्न/बाधा से रक्षा करता है –**"छादयति आवृणोति मन्त्रप्रतियाद्ययज्ञादीन् इति छन्दः।"**

यजुर्वेद तथा सामवेद के कुछ अंश को छोड़कर सभी संहिताएँ छन्दोबद्ध हैं। शुक्ल यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में परमपुरुष (विराटपुरुष) से ही छन्दों की उत्पत्ति कही गई है –

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

बृहद्देवताकार महर्षि शौनक का छन्द के विषय में कथन है कि जो व्यक्ति छन्दोज्ञान के बिना वेदाध्ययन करता है या कराता है वह पाप का भागी होता है –

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः।।

सभी वैदिक छन्द वर्णिक हैं। इनकी गणना मात्राओं से नहीं अपितु वर्णों से होती है। वेद में प्राप्त मुख्यतः सप्त छन्द है जिनका नामोल्लेख शुक्ल यजुर्वेद संहिता में प्राप्त होता है –

गायत्रीत्रिष्टुब्जगत्त्यनुष्टुप्पङक्त्यासह।
बृहत्त्युष्णिहाककुप्सूचीभिः शम्म्यन्तुत्त्वा।।

गायत्री, त्रिष्टिुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, वृहती तथा उष्णिक् ये सात वैदिक छन्द हैं जिनके लक्षण इस प्रकार हैं–

1) **गायत्री छन्द** – इस छन्द में 24 अक्षर होते हैं। इसमें तीन पंक्तियाँ होती हैं और प्रत्येक पंक्ति में 8-8 अक्षर होते हैं।

2) **त्रिष्टुप् छन्द** – इस छन्द में 44 अक्षर होते हैं। इसमें चार पंक्तियाँ होती हैं और प्रत्येक पंक्ति में 12 अक्षर होते हैं। किसी पंक्ति में न्यूनाधिक्य होता है।

3) **जगती छन्द** – इस छन्द में 48 अक्षर होते हैं। इसमें चार पंक्तियाँ होती हैं और प्रत्येक पंक्ति में 12 अक्षर होते हैं।

4) **अनुष्टुप् छन्द** – इस छन्द में 32 अक्षर होते हैं। इसमें चार पंक्तियाँ होती हैं और प्रत्येक पंक्ति में 8-8 अक्षर होते हैं।

5) **पंक्ति छन्द** – इस छन्द में 40 अक्षर होते हैं। इसमें भी चार पंक्तियाँ होती हैं और प्रत्येक पंक्ति में 8 अक्षर होते हैं।

6) **बृहती छन्द** – इस छन्द में 36 अक्षर होते हैं। इसमें चार पंक्तियाँ होती हैं। पहली दो पंक्तियों में 8-8 तृतीय में 12 और चतुर्थ में पुनः 8 अक्षर होते हैं।

7) **उष्णिक् छन्द** – इस छन्द में 28 अक्षर होते हैं। इसमें तीन पंक्तियाँ होती हैं पहली दो पंक्तियों में 8-8 और तृतीय में 12 अक्षर होते हैं।

अक्षरों के न्यूनाधिक होने से इन सात छन्दों के ही अनेक भेद और उपभेद हो जाते हैं। इन सात छन्दों में से भी वैदिक संहिताओं में प्रमुख रूप से गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती छन्दों का अधिक विनियोग प्राप्त होता है।

8.3 निरुक्त

वेदार्थ ज्ञान में निरुक्त का ज्ञान अपरिहार्य है क्योंकि प्रत्यावृत्ति शब्दों के अर्थ का ज्ञान तो व्याकरण करा देता है तथा परोक्षवृत्ति शब्द उणादिकोश से सिद्ध हो जाते हैं, जबकि अतिपरोक्षवृति शब्दों के ज्ञान का कोई साधन नहीं है। निरुक्त निर्वचन के माध्यम से अतिपरोक्षवृत्ति शब्दों का ज्ञान कराता है। इस प्रकार यास्क निरुक्त को व्याकरण का कात्स्न्र्य भी कहते हैं –**"तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्न्र्यम्।"** किन्तु साथ ही यह भी कहते हैं कि निरुक्त का मुख्य प्रयोजन नैघण्टुक शब्दों की व्याख्या करना है। यास्क स्पष्ट रूप में घोषित कर रहे हैं–

"अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते।"

व्याकरण के आधार पर वैदिक शब्दों के स्वर संस्कार का ज्ञान तो हो सकता है, किन्तु अर्थज्ञान स्पष्ट नहीं होता। निरुक्त इसी उद्देश्य को पूर्ण करता है। निर्वचन के आधार पर यास्क एक ही शब्द को विभिन्न अर्थों में व्याख्यात करते हैं, यथा– 'गौ' शब्द को उन्होंने पशु, पृथिवी, रश्मियाँ, धनुष की डोरी आदि अर्थों में व्याख्यायित किया है। यास्क की यही दृष्टि अन्य वैदिक शब्दों के सम्बन्ध में भी रही हैं। ऐसे ही निरुक्त का मुख्य विषय वैदिक पदों की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ को बताना भी है, जैसे – कौन सा पद

कौन सी धातु से बना है ? तथा कौन सा प्रत्यय लगा है ? कैसे शब्द निष्पन्न हुआ है ? यह भी निर्धारण करना निरुक्त का मुख्य बिन्दु है।

निरुक्त तथा व्याकरण दोनों का विषय समान है– शब्द ज्ञान और शब्द व्युत्पत्ति। निरुक्त का विषय कठिन वैदिक शब्दों की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या करना है। जो कठिन शब्द व्याकरण के लिये क्लिष्ट साध्य थे, उनके अर्थज्ञान के लिये निरुक्त की रचना हुई। निरुक्त को वेदपुरुष के श्रवणेन्द्रिय के रूप में स्वीकार किया गया है–

" निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते। "

वास्तव में निरुक्त निघण्टु की टीकामात्र है। निघण्टु में वेद में प्राप्त होने वाले कठिन और दुरूह शब्दों की सूची क्रमबद्ध रूप में दी गई है। उसी निघण्टु पर यास्काचार्य ने अपना भाष्य लिखा जो निरुक्त कहलाया।

निघण्टु के तीन काण्ड हैं। यह पाँच अध्यायों में विभक्त है। पहले काण्ड में तीन अध्याय हैं। इनमें विभिन्न शब्दों के पर्यायवाची शब्द हैं, जैसे – पृथिवी के 21, मेघ के 30, स्वर्ण के 15, वायु के 16, जल के 100 और वेद के 26 पर्यायवाची शब्दों की व्याख्या है। अतः इन तीन अध्यायों को नैघण्टुककाण्ड कहते हैं।

निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में वेद में प्राप्त होने वाले कठिन और अस्पष्ट शब्द दिए गए हैं। निरुक्त के 4 से 6 अध्याय तक इन शब्दों की व्याख्या और स्पष्टीकरण है। इसे नैगमकाण्ड कहते हैं।

निघण्टु के पाँचवें अध्याय में देवतावाचक शब्द हैं। निरुक्त के 7वें अध्याय से 12वें अध्याय तक इनकी व्याख्या है। अतः इसे दैवतकाण्ड कहते हैं। इस प्रकार यास्क के निरुक्त में 12 अध्याय हैं। सायणाचार्य के अनुसार बाद में दो अध्याय परिशिष्ट के रूप में जोड़ दिए गए हैं। इस प्रकार निरुक्त में कुल 14 अध्याय हो गए।

निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय पाँच हैं – वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश और धातु का उसके अर्थातिशय से उसका योग है –

वर्णागमौ वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।।

यास्काचार्य ने पद के चार भेद माने हैं – नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात।

"चत्वारि पदजाताति नामाख्याते चोपसर्ग निपातश्च।"

यास्क ने शब्दों को धात्वज मानकर उनकी व्युत्पत्ति की है। इसमें वैदिक शब्द निर्वचन के अतिरिक्त, भाषाविज्ञान, साहित्य, समाजशास्त्र व ऐतिहासिक विषयों का भी प्रसंगानुकूल विवेचन मिलता है। यास्क ने वैदिक दवेताओं को पृथ्वीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय तथा द्युस्थानीय, इन तीन वर्गों में रखा है।

8.4 ज्योतिष

ज्योतिष वेदाङ्ग को वेद पुरुष के नेत्रों के रूप में स्वीकारा गया है –

"ज्योतिषामयनं चक्षुः"

जिस प्रकार सभी अंगों से युक्त होने पर भी मनुष्य नेत्रहीन होने पर किसी भी कार्य को करने में अक्षम होता है। उसी प्रकार सभी शास्त्रों को जानने पर भी यदि मनुष्य ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान प्राप्त नहीं करता है, तो उसे अपूर्ण ही माना जाता है। आचार्य भास्कराचार्य का कथन है–

संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिः।
चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः।।

ज्योतिष वेदाङ्ग होने के कारण वेद की प्रकाशोत्पादकता को सार्थक बनाता है। आचार्य वराहमिहिर की मान्यता है कि –

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।। लघुजातक – 3/1

अर्थात् जिस प्रकार अन्धकार में पड़ी वस्तु बिना दीपक के दृष्टिगोचर नहीं होती, उसी प्रकार इस शास्त्र के विषय में जानकारी होने पर ही समाज में पड़ने वाले ग्रहों के प्रभाव की सूचना हमें प्राप्त होती है। ज्योतिष एक ऐसा महत्त्वपूर्ण वेदाङ्ग है, जिसकी सहायता से हम मनुष्य के जीवन में अथवा प्रकृति में घटने वाली घटनाओं के बारे में पूर्वाभास कर लेने में समर्थ होते हैं और उससे मुक्त होने की दिशा में भी प्रवृत्त होते हैं।

आचार्य कल्याणवर्मा ने अपने ग्रन्थ 'सारावली' में इसी आशय को स्पष्ट करते हुए कहा है –

विधात्रा लिखिता याऽसौ ललाटेऽक्षरमालिका।
दैवज्ञस्तां पठेद् व्यक्तं होरा निर्मलचक्षुषा ।।
अर्थार्जने सहायः पुरुषाणामापदार्णवे पोतः।
यात्रासमये मन्त्री जातकमपहाय नास्तयपरः।।(सारावली 2/1)

कालगणना ज्योतिष शास्त्र का मुख विषय है। यह गणना गणित द्वारा ही हो सकती है। अतः आचार्य लगधमुनि ने वेदांग ज्योतिष की श्रेष्ठता को प्रमाणित करते हुए कहा है कि जिस प्रकार मयूरों की शिखा तथा सर्पों की मणियाँ सर्वश्रेष्ठ होती हैं, उसी प्रकार सभी वेदाङ्ग शास्त्रों में गणित अथवा ज्योतिष सर्वोपरि है –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्ध्नि तिष्ठति।।

वेदाङ्ग ज्योतिष नामक एक ही ज्योतिष ग्रन्थ प्राप्त होता है। इसको दो प्रतिनिधि ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं – एक आर्च ज्योतिष, जिसका सम्बन्ध ऋग्वेद से है और दूसरा यजुष् ज्योतिष, जिसका सम्बन्ध यजुर्वेद से है। पहले में 36 तथा दूसरे में 43 पद्य हैं। इनमें वैदिक काल की ज्योतिष उपलब्धियों का वर्णन है। इसमें 27 नक्षत्रों, सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों पर विचार किया गया है। इसमें सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति का वर्णन नक्षत्रों के आधार पर किया गया है। इसमें नक्षत्रों की गणना सम्बन्धी नियम भी दिए गए हैं और सौर व चन्द्र मासों की गणना की गई है। यज्ञसम्बन्धी कार्यों के लिये चन्द्रमास ही मुख्य माना गया है।

भारतीय सृष्टि प्रक्रिया में यज्ञ का महत्त्व स्वतः निरुपित किया गया है। यज्ञ से ही वेद का आविर्भाव हुआ है –

तस्माद्यज्ञात्सर्बहुतऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि यज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

यह मन्त्र प्रमाणभूत है। यज्ञ के आयोजन की समीक्षा होती है कि यह निर्विघ्न और फलवत् सुसम्पन्न हो। एतदर्थ समय का निर्धारण महत्त्वपूर्ण होता है। समय का निर्धारण कालशास्त्र अर्थात् ज्योतिष शास्त्र से ही सम्भव है। इस शास्त्र के द्वारा न केवल समय का निर्धारण होता है, अपितु भूमि, पाताल, अकाशमत विषय ज्ञान, भूत-भविष्य-वर्तमान-कालिक क्षेत्रगत शुभाशुभ ज्ञान का भी निर्धारण होता है। यागादि कर्मों में इस वेदाङ्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है – जैसे

"वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निनादधीत, दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत"

कात्यायन श्रौतसूत्र का श्रुतिवाक्य है, वसन्त ऋतु में ब्राह्मण को अग्नि का आधान करना चाहिये। दर्शपूणमासेष्टि करना चाहिये। उसी प्रकार एक और श्रुति वाक्य है –**"अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत"**। आठ वर्ष की उम्र में ब्राह्मण बटुक का उपनयन संस्कार करना चाहिये तत्पश्चात् उसका अध्ययन होना चाहिये।

वहाँ वसन्त ऋतु-दर्शपूर्णमास तथा वर्ष प्रभृति ज्ञान ज्योतिषशास्त्र द्वारा ग्रहों के आधार पर ही किया जाता है। इस प्रकार का ज्ञान आचार्यों द्वारा ग्रह-नक्षत्रों की गति को देखकर ही किया जाता है, इसलिये ज्योतिष वेदाङ्ग को वेदपुरुष का नेत्र कहा है। आचार्य नारद ने भी कहा है –

वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम्।
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्त कर्म न सिद्ध्यति।।

यज्ञ तथा ज्योतष का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। यज्ञ प्रतिपादक वेद हैं और यज्ञ कालाधीन है। काल ज्ञान ज्योतिष शास्त्र द्वारा ही सम्भव है। ज्योतिष शास्त्र में भी वैदिक ज्योतिष शास्त्र का महत्त्व काल गणना के विषय में अनन्वित है–

वेदास्तावद्यकर्मप्रवृत्ताः यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो रातः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्।।

परवर्ती काल के ज्योतिष ग्रन्थों में वराहमिहिर का सूर्य सिद्धान्त उल्लेखनीय है। पराशर एवं गर्ग उसके पूर्ववती और ब्रह्मगुप्त, भास्काराचार्य, आर्यभट्ट और कमलाकर इसके परवर्ती ज्योतिर्विद हुए। इस प्रकार यज्ञ सम्पादन में कालविषयक ज्ञान अत्यावश्यक है। 'आर्च ज्योतिष' ने तो यहाँ तक कहा है कि जो काल विषयक ज्योतिष शास्त्र को जानता है, वही वास्तव में यज्ञों को जानता है –

"तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।"

इस प्रकार जहाँ एक ओर वेदाङ्ग ज्योतिष यज्ञीय विधान के माध्यम से समस्त भूमण्डल और प्राणियों के लिये लोकोपकारी है, अर्थात् समष्टि के लिये कल्याणकारी है, वहीं एक ओर किसी जातक की कुण्डली के अध्ययनोपरान्त उसके शुभाशुभ योगों के मार्जक भी है। सारांशतः हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि आज भारतीय जन-जीवन के लिए वेद एवं वेदाङ्ग का अप्रतिम महत्त्व है, क्योंकि यह शास्त्र काल विधान के साथ-साथ सही दिशा में चलने के लिए स्पष्ट उद्देश्य को भी संकेतित करा देता है, जिसमे मानव का श्रम व्यर्थ नहीं जाता एवं वह शीघ्रातिशीघ्र अपने उद्देश्य प्राप्ति में सफल भी होता है।

8.5 सारांश

वेदों के अध्ययन को सरल तथा सुगम बनाने के लिए छः वेदांगों का प्रणयन हुआ। वेदार्थ को जानने के लिए वेदांग तथ ब्राह्मण आदिग्रन्थ हैं। बहुत सी इन विद्याओं अथवा विषयों का, जिनके सूक्ष्म संकेत इन ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में विद्यमान थे व्यवस्थित एवं विस्तृत विवेचन करके वेदांग के रूप में छः प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई।

निरुक्तशास्त्र की महत्ता बताते हुए स्वयं यास्क ने यह स्पष्ट कहा है कि निरुक्त के अध्ययन के बिना, मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता – ''अथापि इदम् अन्तरेण मन्त्रेषु अर्थप्रत्ययो न विद्यते।'' (निरूक्त)

निरुक्त के द्वारा मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान अथवा मन्त्रों के अर्थ करने की पद्धति का ज्ञान तो होता ही है साथ ही अनेक वैदिक और लौकिक शब्दों के निर्वचन करने का ज्ञान भी प्राप्त होता है इसलिए निरुक्त को व्याकरणशास्त्र की परिपूर्णता मानी गयी। इसके अतिरिक्त वेदों के 'पदपाठ' ओर 'देवता' आदि के ज्ञान के विषय में निरुक्त पर्याप्त सहायक ग्रन्थ है इसलिये वेदाध्ययन की दृष्टि से व्याकरण के समान अथवा उससे कहीं अधिक निरुक्त का स्थान माना जाता रहा है।

छन्दशास्त्र के ग्रन्थों में छन्दों के विषय में विवेचन किया गया है। मन्त्रों के 'ऋषि', 'देवता' आदि के साथ 'छन्द' का ज्ञान भी वेदाध्यायी के लिये परमावश्यक माना गया है। वस्तुतः उदात्तादि स्वरों के समान छन्दों का भी मन्त्रों के अर्थ से सम्बन्ध माना जाता रहा। इसी कारण मीमांसा दर्शन के 'तेषाम् ऋक् यत्र अर्थवशेन पाद व्यवस्था' इस सूत्र में उन मन्त्रों को 'ऋक्' माना गया जिनमें पाद की व्यवस्था अर्थ के अनुरोध से की गई थी। छन्दों से सम्बद्ध ग्रन्थों की भी अपनी एक परम्परा रही है। सम्प्रति पिंगल का छन्दःशास्त्र ही पर्याप्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। परन्तु पिंगल के इस ग्रन्थ से पूर्व भी अनेक छन्दविषयक ग्रन्थ रचे गये थे जिनका संकेत पाणिनीय गणपाठ के ऋगयनादिगण में पठित 'छन्दोविचिति' 'छन्दोमान' 'छन्दीभाषा' आदि छन्दशास्त्र के पर्यायभूत शब्दों में मिल सकता है।

इसी प्रकार ज्योतिष के ग्रन्थों में यव आदि की दृष्टि ऋतु, मास, नक्षत्र, आदि के ज्ञान के साथ-साथ जातक के आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक कष्टों से निवृत्ति तथा उन्नति का मार्ग बताया गया है। 'वेदांग-ज्योतिष' नामक ग्रन्थ वर्तमान में इस शास्त्र के प्रतिनिधि के रूप में विद्यमान हैं। यह ग्रन्थ श्लोकबद्ध है। ऐसे ही ग्रन्थों के आधार पर बाद में अनेक ज्योतिषशास्त्रविषयक उत्कृष्ट, 'सूर्यसिद्धान्त' इत्यादि ग्रन्थों की रचना हो सकी।

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के लिये शिक्षा का, यज्ञीय अनुष्ठान के लिये कल्प का, शब्दों के रूप ज्ञान के लिये व्याकरण का, अर्थज्ञान के लिए शब्दों के निर्वचन के लिये निरुक्त का, वैदिक छन्दों के संज्ञान के लिये छन्द का तथा अनुष्ठानों के उचित काल-निर्णय के लिये ज्योतिषशास्त्र की उपादेयता सिद्ध है।

8.6 शब्दावली

भूमण्डल – धरती, पृथ्वी

उपादेयता – उपयोग में आने की अवस्था या भाव

अपौरुषेय – जो मानवीय न हो

अनादि – जिसका आदि या आरम्भ न हो

शाश्वत – जिसका कभी नाश न हो

प्रदुर्भाव – सामने आने या प्रकट होने की क्रिया

सम्यग् – भली-भाँति

8.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वैदिक साहित्य का इतिहास – डॉ बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी
2. वैदिक साहित्य तथा संस्कृति – मैक्डानल
3. शुक्लयजुर्वेद संहिता (मूल) – श्री वेणीराम शर्मा गौड़, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
4. निघण्टु व निरुक्त – श्री लक्ष्मणस्वरूप, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
5. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास – पी.वी.काणे, अनु. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
6. निरुक्त – डॉ. कपिलदेव शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ
7. वैदिक छन्दोमीमांसा – युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत, हरियाणा)
8. निरुक्त – श्री शिवनारायणशास्त्री, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, दिल्ली
9. भारतीयज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः – आचार्य लोकमणि दाहाल, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
10. बलबोधज्योतिषसारसमुच्चयः – श्री दुर्गाशंकर शास्त्री, बालुकेश्वर संस्कृत पाठशाला, बाणगंगा, मुम्बई
11. मुहूर्तचिन्तामणि – चौखम्भा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी
12. सिद्धन्तशिरोमणि – पं. सत्यदेव शर्मा, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
13. सारवली – सम्पा. डॉ. सत्येन्द्र मिश्र, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी

8.8 अभ्यास प्रश्न

.1. "छन्दः पादौ तु वेदस्य" को सविस्तार समझाइए।

2. यज्ञीय विधानों में ज्योतिषशास्त्र की महती भूमिका है, स्पष्ट कीजिए।

3. निरुक्त क्या है? इसके प्रतिपाद्य विषय कौन-कौन से है

4. वेदार्थ ज्ञान में निरुक्त की उपयोगिता सिद्ध कीजिए।

5. निम्नलिखित छन्दों के लक्षण कीजिये –

   (क) गायत्री (ख) त्रिष्टुप्

   (ग) अनुष्टुप् (घ) जगती

इकाई 9 कल्प

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 कल्प

9.3 ऋग्वेद के कल्पसूत्र

- 9.3.1 ऋग्वेद के श्रौतसूत्र
- 9.3.2 ऋग्वेद के गृह्यसूत्र
- 9.3.3 ऋग्वेद के धर्मसूत्र
- 9.3.4 ऋग्वेद के शुल्बसूत्र

9.4 यजुर्वेद के कल्प सूत्र

- 9.4.1 यजुर्वेद के श्रौतसूत्र
- 9.4.2 यजुर्वेद के गृह्यसूत्र
- 9.4.3 यजुर्वेद के धर्मसूत्र

9.5 सामवेद के कल्प सूत्र

- 9.5.1 सामवेदीय श्रौतसूत्र
- 9.5.2 सामवेदीय गृह्यसूत्र
- 9.5.3 सामवेदीय धर्मसूत्र

9.6 अथर्ववेद के कल्प सूत्र

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.10 अभ्यास प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- कल्प वेदाङ्ग का अध्ययन कर सकेंगे।
- श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र आदि के प्रतिपाद्य विषय को समझ सकेंगे।
- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद के अन्तर्गत परिगणित श्रौतसूत्रों, गृह्यसूत्रों आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- यज्ञीय विधानों को समझ सकेंगे।
- इकाई से सम्बद्ध पारिभाषिक पदों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! MSK005 'वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता' पाठ्यक्रम की इस इकाई में आप कल्प वेदांग का अध्ययन करेंगे। आप जानते हैं कि वेदांग छः हैं – शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प।

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।।

वेद शब्द विद् धातु से घञ् प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है। विद् धातु के चार अर्थ हैं – विद् ज्ञाने, विद् विचारणे, विद् सत्तायाम्, विदलृ लाभे। आप जानते हैं कि वेद चार हैं – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन वेदों के अध्ययन के लिए हमें वेदांगों की आवश्यकता होती है। वेदांगों के माध्यम से हम वेदों के वास्तविक अर्थ को जानते हैं। पतंजलि ने वेदांगों के महत्त्व को इस प्रकार स्पष्ट किया है – **ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।'** इकाई छः एवं सात के माध्यम से आपने शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष इन पाँच वेदांगों के महत्त्व, वर्ण्य-विषय एवं प्रयोजन के विषय में अध्ययन किया। इस इकाई में आप कल्प वेदांग के अन्तर्गत परिगणित श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र एवं शुल्बसूत्र के विषय में अध्ययन करेंगे।

9.2 कल्प

षड् वेदांगों में कल्प वेदांग का विशेष महत्त्व है। कल्प वेदांग को वेद पुरुष का हाथ स्वीकार किया गया है – **हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।** आचार्य सायण के अनुसार जिन ग्रन्थों में यज्ञसम्बन्धी विधियों का समर्थन अथवा प्रतिपादन किया जाता है उन्हें कल्प कहते हैं –

कल्पयते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र इति व्युत्पत्तेः। (सायण)

ऋग्वेदप्रातिशाख्य की टीका में विष्णुमित्र ने कहा है कि जिन ग्रन्थों में वैदिक कर्मो का सांगोपांग विवेचन किया जाता है, उन्हें कल्प कहते हैं –

वेदविहितानां कर्मणां आनुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्।

अर्थात् वेदों में वर्णित यज्ञों के समस्त विधि-विधान का जिन ग्रन्थों में वर्णन प्राप्त होता है, उन्हें हम कल्प कहते हैं। यह ग्रन्थ सूत्रशैली में लिखे गए हें, अतः इन्हें सूत्र भी कहते हैं।

वैदिक काल में यज्ञ की प्रधानता थी। उस समय यज्ञों के नियम अत्यन्त विस्तृत एवं कठोर थे। परिणमतः इनके व्यावहारिक प्रयोग को सरल और सुगम बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कल्प सूत्रों का निर्माण किया गया है। कल्पसूत्र चार हैं – श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र।

श्रौतसूत्र – श्रौत का तात्पर्य है श्रुति प्रतिपादित या वेदों में वर्णित। श्रौत शब्द की निष्पत्ति श्रुत शब्द से हुई है। वेदों में वर्णित यज्ञ-याग विधियों का विवेचन ही श्रौतसूत्र का विषय है। इन सूत्रों में यज्ञ के प्रारम्भ से लेकर अन्तिम चरण तक के करणीय

कार्यों का क्रमानुसार वर्णन वर्णित है। इनमें मुख्यतः दर्शपूर्णमास, सोमयाग, वाजपेय, राजसूय आदि यज्ञों से सम्बन्धित विधियों का वर्णन प्राप्त होता है।

गृह्यसूत्र – गृह्यसम्बन्धी यज्ञों तथा उत्सवों आदि से सम्बन्धित विधियों का वर्णन करना गृह्यसूत्रों का प्रतिपाद्य है। इन गृह्यसूत्रों में जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त किए जाने वाले षोडश संस्कारों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पंच महायज्ञ, सात पाकयज्ञ, गृह निर्माण, गृह प्रवेश, पशुपालन और कृषिकार्य आदि से सम्बन्धित यज्ञ विधियों का वर्णन इन गृह्यसूत्रों में किया गया है।

धर्मसूत्र – धर्मसूत्रों का सम्बन्ध आचारशास्त्र से है। इनमें सामाजिक व्यवस्था और वर्णश्रम धर्म का विस्तृत विवेचन किया गया है। इनमें वर्णाश्रम के कर्तव्यों, आचार-विचार, मान्यताओं और सामाजिक जीवन के करणीय और अकरणीय कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार आचरण की दृष्टि से धर्मसूत्रों का विशेष महत्त्व है।

षुल्बसूत्र – शुल्बसूत्र मुख्यतः गणितशास्त्र से सम्बन्धित वैज्ञानिक ग्रन्थ है। शुल्ब का अर्थ है रज्जु अर्थात् रज्जु के द्वारा मापी गई वेदों की रचना शुल्बसूत्रों का प्रतिपाद्य विषय है। इन सूत्रों में छोटी-बड़ी सभी प्रकार की वेदियों के निर्माण की विधि दी गई है।

9.3 ऋग्वेद के कल्पसूत्र

इकाई के इस अंश में आप ऋग्वेद के कल्पसूत्रों का अध्ययन करेंगे।

9.3.1 ऋग्वेद के श्रौतसूत्र

1. **आश्वलायन श्रौतसूत्र** – इसके रचयिता आश्वलायन ऋषि हैं। इसका सम्बन्ध ऋग्वेद की शाकल और बाष्कल दोनों शाखाओं से है। इसमें 12 अध्याय हैं। दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, आग्रयण इष्टि, सौत्रामणी, ज्योतिष्टोम, सत्रयाग, एकाह आदि विषय इसमें वर्णित हैं। इन श्रौतयागों में होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक और ग्रावस्तुत ऋत्विज् हैं। इनमें इन ऋत्विजों के कार्यकलापों का वर्णन है।
2. **शांखायन श्रौतसूत्र** – यह श्रौतसूत्र शांखायन ब्राह्मण पर आश्रित है। इसके रचयिता शांखायन ऋषि हैं। इसमें 18 अध्याय हैं। दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, अतिरात्र, अश्वमेध, हविर्याग, वाजपेय, राजसूय, पुरुषमेध आदि विषय वर्णित हैं। इसकी शैली ब्राह्मण ग्रन्थों के समान है परिणामतः यह श्रौतसूत्र अत्यन्त प्राचीन माना जाता है।

9.3.2 ऋग्वेद के गृह्यसूत्र

आश्वलायन गृह्यसूत्र – इसके रचयिता आश्वलायन ऋषि हैं। यह गृह्यसूत्रों में प्राचीनतम माना जाता है। इसमें चार अध्याय हैं जिनमें पाकयज्ञ, पुंसवन, जातकर्म, मुण्डन आदि संस्कारों, श्रावणकर्म, वास्तु निर्माण, गृह प्रवेश, पंच महायज्ञ, उपकर्म, दाहकर्म आदि विषय वर्णित हैं।

शांखायन गृह्यसूत्र – यह ऋग्वेद की बाष्कल शाखा से सम्बन्धित है। इसके रचयिता सुयज्ञ हैं। इसमें छः अध्याय हैं। इसके प्रारम्भिक चार अध्यायों में गृह्यसूत्रों में वर्णित विषयों का उल्लेख है। पंचम अध्याय में कूप, तडाग, उद्यान आदि की स्थापना

का वर्णन है। षष्ठ अध्याय में वैदिक संहिताओं और उपनिषदों आदि के अध्ययन के नियम हैं।

कौषीतकि गृह्यसूत्र – इसके रचयिता शाम्भव्य अथवा शांबव्यं हैं। इसमें पाँच अध्याय हैं। इसके प्रारम्भिक चार अध्यायों के विषय शांखायन गृह्यसूत्र के समान हैं। इसके अन्तिम अध्याय में अन्त्येष्टि का वर्णन है।

9.3.3 ऋग्वेद के धर्मसूत्र

ऋग्वेद के दो धर्मसूत्र प्राप्त होते हैं – वासिष्ठ, विष्णु।

वासिष्ठ धर्मसूत्र – यह महर्षि वसिष्ठ की रचना है। विभिन्न संस्करणों में इसके अध्यायों की संख्या 6, 10, 20, 30 है। इसके 24-28 अध्यायों में प्राणायाम की प्रशंसा की गई है। इसमें सदाचार पर बहुत बल दिया गया है।

श्वष्णु धर्मसूत्र – यह गद्य-पद्य मिश्रित है। इसके 160 श्लोक मनुस्मृति से अक्षरशः मिलते हैं। इसमें अधिकांश श्लोक मनुस्मृति से ही लिए गए हैं। इसमें याज्ञवल्क्य स्मृति, गौतम धर्मसूत्र और वासिष्ठ धर्मसूत्र के भी श्लोक एवं सूत्र प्राप्त होते हैं।

9.3.4 ऋग्वेद के शुल्बसूत्र

वैदिक परम्परा में यागादि अनुष्ठान को ही धर्म माना गया है। यह यज्ञ-यागादि का अनुष्ठान जिस वेदी पर होता है उसके निर्माण का विधान इन शुल्बसूत्रों में प्राप्त होता है। शुल्बसूत्र ज्यमितिशास्त्र के प्राचीनतम स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। शुल्बसूत्रों की दृष्टि से यजुर्वेद की ग्रन्थ-परम्परा समृद्ध है। ऋग्वेद का कोई शुल्बसूत्र वर्तमान में उपलब्ध नहीं होता है।

9.4 यजुर्वेद के कल्पसूत्र

कल्पसूत्रों की दृष्टि से यजुर्वेद की ग्रन्थ-परम्परा अन्य वेदों की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। यजुर्वेद में भी शुक्ल यजुर्वेद की अपेक्षा कृष्ण यजुर्वेद के श्रौतसूत्रों की संख्या अधिक है। यजुर्वेद के निम्नलिखित कल्पसूत्र हैं –

शुक्लयजुर्वेदीय कल्पसूत्र –
शुक्लयजुर्वेदीय श्रौतसूत्र –कात्यायन श्रौतसूत्र
शुक्लयजुर्वेदीय गृह्यसूत्र –पारस्कर गृह्यसूत्र
शुक्लयजुर्वेदीय धर्मसूत्र –हारीत तथा शंखधर्मसूत्र
शुक्लयजुर्वेदीय शुल्बसूत्र –कात्यायन शुल्बसूत्र
कृष्णयजुर्वेदीय कल्पसूत्र –
कृष्णयजुर्वेदीय श्रौतसूत्र –बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वैखानस, भारद्वाज, वाधूल, वाराह और मानव श्रौतसूत्र।
कृष्णयजुर्वेदीय गृह्यसूत्र –बौधायन, आपस्तम्ब, मानव, भारद्वाज, काठक, आग्निवेश्य, हिरण्यकेशी, वाराह और वैखानस गृह्यसूत्र।
कृष्णयजुर्वेदीय धर्मसूत्र –बौधायन, आपस्तम्ब, वैखानस, मानव।
कृष्णयजुर्वेदीय शुल्बसूत्र –बौधायन, आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणीय, वाराह एवं वाधूल शुल्बसूत्र

यहाँ यजुर्वेद के कतिपय प्रतिनिधि कल्पसूत्रों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

9.4.1 यजुर्वेद के श्रौतसूत्र

क) शुक्ल यजुर्वेद के श्रौतसूत्र –

1. **कात्यायन या पारस्कर श्रौतसूत्र** – श्रौतसूत्र साहित्य में इसे प्रतिनिधि ग्रन्थ माना गया है। यह शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध है। इसमें कुल छब्बीस अध्याय हैं। इसमें मुख्य रूप से श्रौत यागों का वर्णन प्राप्त होता है। इस श्रौतसूत्र का मुख्य उपजीव्य शतपथ ब्राह्मण है किन्तु अन्तिम तीन अध्यायों का आधार ताण्ड्य महाब्राह्मण है।

   इसके प्रथम अध्याय में 10 कण्डिकाओं में याग सम्बन्धी अनेक विषय वर्णित हैं। द्वितीय तथा तृतीय अध्याय में दर्शपूर्णमासयाग का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में पिण्डपितृयज्ञ, दाक्षायण, आग्रयण, अग्न्याधान, पुनराधान, अग्न्युपस्थान और अग्निहोत्र का वर्णन है। पंचम अध्याय में चातुर्मास्य, मित्रविन्द इष्टि का वर्णन है। षष्ठ अध्याय में निरूढ पशुबन्ध का वर्णन है। सप्तम से दशम अध्याय में अग्निष्टोम याग का वर्णन है। ग्यारहवें अध्याय में ब्रह्म नामक ऋत्विक् के कर्तव्य का वर्णन है। द्वादश अध्याय में द्वादशाह का वर्णन है। त्रयोदश अध्याय में गवानयन का वर्णन है। चर्तुदश अध्याय में वाजपेय याग का वर्णन है। पञ्चदश अध्याय में राजसूय याग का वर्णन है। षोडश से एकोनविंशति अध्याय तक अग्निचयन, सौत्रामणि याग का वर्णन है। विंशति अध्याय में अश्वमेध याग का वर्णन है। एकविंशति अध्याय में पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध का वर्णन है। द्वाविंशति से चतुर्विंशति अध्याय तक एकाह, अहीन और सत्र का वर्णन है। पञ्चविंशति अध्याय में प्रायश्चित्त का वर्णन है। षड्विंशति अध्याय में प्रवर्ग्य का वर्णन है।

2. **कातीय/कात्यायन/पारस्कर गृह्यसूत्र** – गृह्यसूत्रों में पारस्कर गृह्यसूत्र अपने वर्ण्य-विषय एवं प्रभूत टीका-सम्पत्ति के कारण विद्वज्जगत में अत्यन्त समादरणीय है। यह शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध है। यह ग्रन्थ तीन काण्डों में विभक्त है। प्रथम काण्ड में आवसथ्य अग्न्याधान, विवाह से लेकर अन्नप्राशन तक के संस्कारों का वर्णन है। चूड़ाकरण, उपनयन, समावर्तन, पञ्चमहायज्ञ आदि का वर्णन द्वितीय काण्ड में तथा अन्तिम तृतीय काण्ड में श्राद्ध एवं प्रायश्चित्त की विधियों का वर्णन है। इस सूत्रग्रन्थ पर रचित टीका/भाष्य ग्रन्थों का विवरण निम्नानुसार है –

गृह्यसूत्रभाष्य के टीकाकार कर्क हैं। सज्जनवल्लभ भाष्य के टीकाकार जयराम हैं। गृह्यसूत्रव्याख्यान के हरिहर हैं। गृह्यभाष्य के टीकाकार गदाधर हैं। गृह्यसूत्रप्रकाशिका के टीकाकार विश्वनाथ हैं।

ख) कृष्ण यजुर्वेद के श्रौतसूत्र –

1. **बौधायन श्रौतसूत्र** – प्राचीन श्रौतसूत्रों में इसका स्थान सर्वोपरि है। यह श्रौतसूत्र 30 प्रश्नों (अध्यायों) में विभक्त है। दर्शपूर्णमास याग, अग्न्याधेय, अश्वमेघ औपनवाक्य द्वादशाह, अतिरात्र, एकाह आदि इस श्रौतसूत्र के मुख्य वर्ण्य-विषय हैं।

2. **आपस्तम्ब श्रौतसूत्र** – कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध यह कल्पसूत्र तीस प्रश्नों या अध्यायों में विभक्त है। आरम्भ के तेइस प्रश्न (अध्याय) श्रौतसूत्र के रूप में मान्य

हैं। इसका सत्ताइसवाँ प्रश्न गृह्यसूत्र है। इसमें विवाह, उपनयन, समावर्तन, मधुपर्क, सीमन्तोन्नयन आदि संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है। 28-29 प्रश्नों में ब्रह्मचर्य, भोजन-विचार, प्रायश्चित्त आदि उपयोगी विषयों का वर्णन प्राप्त होने से यह भाग धर्मसूत्र कहलाता है। अन्तिम तीसवाँ प्रश्न शुल्बसूत्र है। मध्य में 24 से 26 प्रश्नों में गृह्यकर्म से सम्बद्ध मन्त्रों का संकलन किया गया है। इस प्रकार यह अपने आप में एक सम्पूर्ण कल्पसूत्र है।

3. **हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र** – इस श्रौतसूत्र में 24 प्रश्न (अध्याय) हैं। इसका वर्ण्य विषय प्रायः वौधायन के समान है। इसमें श्रौत कृत्यों के मध्य में गृह्यसूत्र भी दिए गए हैं।

4. **वैखानस श्रौतसूत्र** – यह शुक्ल यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध है। इस पर वौधायन, आपस्तम्ब और सत्याषाढ तीनों श्रौतसूत्रों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसमें 32 अध्याय हैं। इसका वर्ण्य-विषय प्रायः वौधायन के तुल्य है। इसमें अश्वमेघ का निरूपण नहीं है।

5. **भारद्वाज श्रौतसूत्र** – यह श्रौतसूत्र तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध है। इसमें तैत्तिरीय संहिता से अनेक मन्त्र उद्धृत हैं। दर्शपूर्णमास, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, ज्योतिष्टोम आदि इसके वर्ण्य-विषय हैं।

6. **वाधूल श्रौतसूत्र** – यह वौधायन के समान प्राचीन श्रौतसूत्र है। इसमें 15 प्रपाठक हैं। अनुवाक और पटल इसके उपविभाग हैं। अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, पुरोडाशी, आग्रयण, पशुबन्ध आदि इसके वर्ण्य-विषय हैं।

7. **वाराह श्रोतसूत्र** – यह मैत्रायणी शाखा से सम्बद्ध है। इसमें तीन अध्याय और उनके उपखण्ड हैं। इसमें प्रथम अध्याय में परिभाषा, यजमान, अग्न्याधेय आदि का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में अग्निचयन से सम्बद्ध सामग्री हैं। तृतीय अध्याय में वाजपेयी, द्वादशाह, गवामयन, राजसूय आदि का वर्णन है।

8. **मानव श्रौतसूत्र** – इसका सम्बन्ध मैत्रायणी शाखा से है। इसमें 5 भाग और 11 अध्याय हैं। दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, प्रायश्चित आदि का वर्णन है।

9.4.2 यजुर्वेद के गृह्यसूत्र

क) शुक्ल यजुर्वेद के गृह्यसूत्र–

1. **कातीय/ कात्यायन /पारस्कर गृह्यसूत्र** – गृह्यसूत्रों में पारस्कर गृह्यसूत्र अपने वर्ण्य-विषय एवं प्रभूत टीका-सम्पत्ति के कारण विद्वज्जगत में अत्यन्त समादरणीय है। यह शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध है। यह ग्रन्थ तीन काण्डों में विभक्त है। प्रथम काण्ड में आवसथ्य अग्न्याधान, विवाह से लेकर अन्नप्राशन तक के संस्कारों का वर्णन है। चूड़ाकरण, उपनयन, समावर्तन, पञ्चमहायज्ञ आदि का वर्णन द्वितीय काण्ड में तथा अन्तिम तृतीय काण्ड में श्राद्ध एवं प्रायश्चित्त की विधियों का वर्णन है। इस सूत्रग्रन्थ पर रचित टीका/भाष्य ग्रन्थों का विवरण निम्नानुसार है –

   गृह्यसूत्रभाष्य के टीकाकार कर्क हैं। सज्जनवल्लभ भाष्य के टीकाकार जयराम हैं। गृह्यसूत्रव्याख्यान के हरिहर हैं। गृह्यभाष्य के टीकाकार गदाधर हैं। गृह्यसूत्रप्रकाशिका के टीकाकार विश्वनाथ हैं।

ख) कृष्ण यजुर्वेद के गृह्यसूत्र –

1. **वौधायन गृह्यसूत्र** – इसके रचयिता वौधायन हैं। यह वौधायन कल्पसूत्र का एक विशिष्ट अंश है। इसमें चार प्रश्न हैं। विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, उपनयन आदि इसके वर्ण्य-विषय हैं।

2. **मानव गृह्यसूत्र** – यह मैत्रायणी शाखा से सम्बद्ध है। इसके रचयिता आचार्य मानव हैं। इसमें 2 पुरुष (अध्याय) हैं। इनके 41 उपविभाग हैं। ब्रह्मचारी के कर्तव्य, समावर्तन संस्कार, वेदाध्ययनविधि, पंच महायज्ञ इसके वर्ण्य-विषय हैं।

3. **भारद्वाज गृह्यसूत्र** – यह भारद्वाज कल्प सूत्र का एक अंश है। इसमें तीन प्रश्न (अध्याय) हैं। उपनयन, विवाह, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण इसके वर्ण्य-विषय हैं।

4. **आपस्तम्ब गृह्यसूत्र** – यह आपस्तम्ब कल्पसूत्र का अंश है। इस कल्पसूत्र में 30 प्रश्न हैं। इनमें 25, 26 और 27 अध्याय गृह्यसूत्र हैं। परिभाषायें, पाकयज्ञ, विवाह, उपाकरण, उपनयन, पुंसवन आदि इसके वर्ण्य-विषय हैं।

9.4.3 यजुर्वेद के धर्मसूत्र

क) शुक्ल यजुर्वेद के धर्मसूत्र –

1. **हारीत धर्मसूत्र** – वौधायन, आपस्तम्ब और वासिष्ठ धर्मसूत्रों में इसका उल्लेख है। इसमें 30 अध्याय हैं। इसमें पद्यात्मक वचन भी हैं। इसमें 8 प्रकार के विवाहों का वर्णन है जिसमें आर्ष एवं प्राजापत्य विवाह को क्षात्र एवं मानुष विवाह की संज्ञा दी गई है।

ख) कृष्ण यजुर्वेद के धर्मसूत्र –

1. **बौधायन धर्मसूत्र** – यह बौधायन कल्पसूत्र का ही अंश है। इसमें इसके चार अध्याय है। इन चार अध्यायों में ब्रह्मचर्य के नियम, दाय भाग, वर्णसंकर, पंच महायज्ञ, श्राद्ध, चान्द्रायण आदि व्रत, प्रायश्चित, काम्य सिद्धियाँ आदि का वर्णन है।

2. **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** – आपस्तम्ब कल्पसूत्र के ही अन्त के दो प्रश्न 28 और 29 आपस्तम्ब धर्मसूत्र कहे जाते हैं। इसके रचयिता आपस्तम्ब हैं। इसका वर्ण्य-विषय प्रायः वौधायन धर्मसूत्र के ही समान है।

9.4.4 यजुर्वेद के शुल्बसूत्र

क) शुक्ल यजुर्वेद के शुल्बसूत्र –

1. **कात्यायन शुल्बसूत्र** – इसका सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग सूत्रों में हैं। इसमें 6 कंडिकाओं में 102 सूत्र हैं, इसमें वेदियों के निर्माण के लिए आवश्यक रेखागणितीय निर्देश हैं।

ख) कृष्ण यजुर्वेद के शुल्बसूत्र –

1. **वौधायन शुल्बसूत्र** – इसका सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद से है। इसके रचयिता वोधायन मुनि हैं। इसमें 3 परिच्छेद हैं जिनमें विविध मानों का वर्णन, यज्ञिय

वेदियों के निर्माण के लिए रेखागणितीय तथ्य, गार्हपत्य चिति और छन्दश्चिति के निर्माण की प्रक्रिया, काम्य इष्टियों के 17 प्रभेदों का वर्णन है।

2. **आपस्तम्ब शुल्बसूत्र** – इसका सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद से है। इसमें 6 पटल हैं जिनमें 21 अध्याय तथा 498 सूत्र हैं। इसमें रेखागणितीय सिद्धान्तों, वेदियों के क्रमिक स्थान और आकृतियों तथा काम्य इष्टियों के लिए आवश्यक विभिन्न वेदियों के आकार-प्रकार का वर्णन है।

3. **मानव शुल्बसूत्र** – यह गद्य-पद्य मिश्रित एक छोटा शुल्बसूत्र है। इसमें अनेक नवीन वेदियों का वर्णन मिलता है।

9.5 सामवेद के कल्पसूत्र

सामवेद के निम्नलिखित कल्पसूत्र हैं –

- **सामवेदीय श्रौतसूत्र** – लाट्यायन, द्राह्यण, मशक (आर्षेय), खादिर तथा जैमिनीय।
- **सामवेदीय गृह्यसूत्र** – खादिर, गोभिल, गौतम, जैमिनीय।
- **सामवेदीय धर्मसूत्र** – गौतम धर्मसूत्र।
- **सामवेदीय शुल्बसूत्र** – सामवेद का कोई शुल्बसूत्र नहीं है।

9.5.1 सामवेदीय श्रौतसूत्र

यहाँ सामवेद के कुछ प्रमुख श्रौतसूत्रों का वर्णन किया जा रहा है।

1. **आर्षेय कल्प या मषक श्रौतसूत्र** – यह सामवेदीय ताण्ड्य महाब्राह्मण से सम्बद्ध है। इसका कुछ अंश षड्विंश ब्राह्मण से सम्बद्ध है। इसके रचयिता मशक ऋषि माने जाते हैं। इसमें 11 अध्याय हैं। इसमें सोमयाग, ज्योतिष्टोम, पंचरात्र, सप्तरात्र आदि का वर्णन है।

2. **लाट्यायन श्रौतसूत्र** – इस श्रौतसूत्र में 10 प्रपाठक और 2641 सूत्र हैं। इसमें अग्निष्टोम से सम्बद्ध भाग, वाणिभक्षण, एकाह, अहीन, वाजपेय, राजसूय आदि यज्ञों का वर्णन है।

9.5.2 सामवेदीय गृह्यसूत्र

1. **खादिर गृह्यसूत्र** – यह गृह्यसूत्र सामवेद की राणायनीय शाखा से सम्बद्ध है। यह वास्तव में गोभिल गृह्यसूत्र का संक्षिप्त संस्करण है।

2. **गोभिल गृह्यसूत्र** – यह गृह्यसूत्र सामवेद की कौथुम शाखा से सम्बद्ध है। यह सामवेद का सबसे प्राचीन गृह्यसूत्र है। इसमें 4 प्रपाठक हैं जिनमें 39 खण्ड हैं। इनमें सामान्य विधियाँ, होम के अधिकारी, अग्नयाधान, आचमनविधि, विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, गोदान, ब्रह्मचारी के कर्म, पितृयज्ञ काम्यकर्म, वास्तुनिर्माण आदि विषय वर्णित हैं।

3. **द्राह्यायण गृह्यसूत्र** – यह खादिर गृह्यसूत्र के समान है। खादिर गृह्यसूत्र का ही पाठ्य इसमें भी उपलब्ध होता है।

4. **जैमिनीय गृह्यसूत्र** – यह गृह्यसूत्र गोभिल गृह्यसूत्र से कई रूपों में सम्बद्ध है। इसमें दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में 24 और द्वितीय में 9 कण्डिकायें हैं। इसके प्रथम अध्याय में संस्कारों का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में श्राद्ध, अष्टकायें, अन्तयेष्टि और शान्तिकृत्य वर्णित है।

5. **कौथुम गृह्यसूत्र** – यह गृह्यसूत्र नितान्त संक्षिप्त है। इसके वर्ण्य विषयों का क्रम गोभिल गृह्यसूत्र से भिन्न है। इसमें सर्वप्रथम प्रायश्चितों का वर्णन किया गया है।

9.5.3 सामवेदीय धर्मसूत्र

1. **गौतम धर्मसूत्र** – यह धर्मसूत्र प्राचीनतम है। इसके रचयिता गौतम हैं। इसमें 28 अध्याय तथा 1000 सूत्र हैं। यह सूत्रात्मक शैली में लिखा गया है। इसकी भाषा परिष्कृत है। इसमें धर्म के स्रोत, चार आश्रमों का वर्णन, ब्रह्मचारी, गृहस्थ आदि के कर्तव्य, राजधर्म, कर, सम्पत्ति की सुरक्षा, अपराध और दण्डविधान, दायभाग आदि विषय वर्णित हैं।

9.6 अथर्ववेद के कल्प सूत्र

अथर्ववेद के निम्नलिखित कल्पसूत्र हैं –

अथर्ववेदीय श्रौतसूत्र– वैतान श्रौतसूत्र। (एकमात्र उपलब्ध है)
अथर्ववेदीय गृह्यसूत्र – कौशिक गृह्यसूत्र।
अथर्ववेदीय धर्मसूत्र – अथर्ववेद का कोई धर्मसूत्र नहीं मिलता है।
अथर्ववेदीय शुल्बसूत्र – अथर्ववेद का कोई शुल्बसूत्र भी उपलब्ध नहीं है।

अथर्ववेद के कुल दो ही कल्पसूत्र उपलब्ध हैं। इनमें एक वैतान श्रौतसूत्र है और दूसरा कौशिक गृह्यसूत्र। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

वैतान श्रौतसूत्र – वैतान श्रौतसूत्र का आधार सामवेद का गोपथ ब्राह्मण है। इसमें कुल आठ अध्याय और तैतालीस कण्डिकाएँ हैं। इसमें दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय आदि यागों और इष्टियों का निरूपण किया गया है। श्रौतसूत्रों की परम्परा में इसे अर्वाचीन माना गया है।

कौशिक गृह्यसूत्र – यह अथर्ववेद का एकमात्र गृह्यसूत्र है। इसमें शान्ति और अभिचार कर्मों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। इस गृह्यसूत्र के 14 अध्यायों में कुल 141 कण्डिकाएँ हैं। इस ग्रन्थ में यज्ञ अनुष्ठान के अतिरिक्त अर्थशास्त्रीय, राजशास्त्रीय, शिक्षा, एकता, भैषज्य, शालानिर्माण, अभिचार कर्म तथा प्रायश्चित्त आदि महत्त्वपूर्ण विषयों का भी प्रतिपादन हुआ है। विद्वानों ने इसका रचनाकाल यास्क से पहले का माना है।

9.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! MSK005 'वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता' पाठ्यक्रम की इस इकाई में आपने कल्प वेदांग का अध्ययन किया। आप जानते हैं कि चारों वेदो के अपने-अपने कल्पसूत्र हैं। कल्पसूत्रों के अन्तर्गत श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र परिगणित हैं। श्रौतसूत्रों के अन्तर्गत विभिन्न यज्ञों यथा

ज्योतिष्टोम, दर्शपूर्णमास, राजसूय, वाजपेय, अतिरात्र, एकाह, अहीन आदि का विवेचन किया गया है। धार्मिक दृष्टि से श्रौतसूत्रों का अत्यन्त महत्त्व है। गृह्यसूत्रों में पाकयज्ञ, संस्कार, विवाह, उपनयन, श्राद्धकर्म, दाहकर्म आदि का वर्णन प्राप्त होता है। धर्मसूत्रों में मनुष्य की विधि व्यवस्था, उसकी आचार-संहिता, नैतिक एवं धार्मिक कृत्यों का वर्णन है। इनमें चतुवर्णों के कर्तव्य कर्मों के साथ-साथ राजधर्म का वर्णन भी किया गया है। यज्ञवेदी निर्माण की प्रक्रिया में शुल्बसूत्र की महती भूमिका है। इस इकाई में आपने ऋग्वेद के कल्पसूत्रों यथा आश्वलायन, शांखायन, कौषितकि, वसिष्ठ, विष्णु आदि, यजुर्वेद के कल्पसूत्रों यथा कात्यायन, पारस्कर, बौधायन, मानव, वैखानस आदि, सामवेद के कल्पसूत्रों मशक, खादिर, गोभिल, गौतम आदि, अथर्ववेद के कल्पसूत्रों वैतान आदि का अध्ययन किया

9.8 शब्दावली

सप्तपाकयज्ञसंस्था – औपासन होमः, वैश्वदेवम्, पार्वणम्, अष्टका, मासिश्राद्धम, श्रवणा, शूलगव।

सप्तहविर्यज्ञसंस्था – अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, आग्रयणम्, चातुर्मास्य, निरुढपशुबन्धः, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादि हर्विहोम।

सप्तसोमसंस्था – अग्निष्टोमः, अत्यग्निष्टोमः, उक्थ्यः, षोडशी, वाजपेयी, अतिरात्र तथा आप्तोर्याम।

अग्न्युद्धरणम् – प्रणयन करने के लिये गार्हपत्य से आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि को पृथक् करना ही अग्न्युद्धरण है।

उपांशुयाजः – यज्ञ करते समय कुछ ऋचाओं को उपांशु (फुसफुसाते हुए) होते हुए पढ़ा जाता है।

उल्लमुकम् – जलती हुई काष्ठ को उल्लमुक कहते हैं।

उपस्पर्शनम् – आचमन।

पृषदाज्यम् – दधिमिश्रित आज्य।

यवागू – आधा पका हुआ चावल।

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. कात्यायन श्रौतसूत्र – श्रीविद्याधरशर्मा गौड़, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
2. धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग 1–5) – श्री पी.वी.काणे, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ
3. यजुर्वेद – श्रीपाद दामोदर शास्त्री सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी, सूरत
4. शुक्ल यजर्वेद संहिता (मूलमात्र) – श्री वेणीराम शर्मा गौड़, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
5. वैदिक साहित्य का इतिहास – पारसनाथ द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
6. वैदिक साहित्य तथा संस्कृति – मैक्डानल
7. वैदिक साहित्य का इतिहास – डॉ. बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी

8. नवीन वैदिक सञ्चयनम् – डॉ. जमुना पाठक एवं डॉ. उमेश प्रसाद सिंह, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
9. शतपथ ब्राह्मण – डॉ. युगल किशोर मिश्र (अनुवादक), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
10. श्रौतयज्ञ परिचय – श्री वेणीराम शर्मा गौड़, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
11. पारस्कर गृह्यसूत्र – डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

9.10 अभ्यास प्रश्न

1. वेदांग किसे कहते हैं? वेदांगों के महत्त्व को समझाइए।
2. वेदांग क्या है? कल्प वेदांग को सविस्तार समझाइए।
3. यज्ञीय विधानों में श्रौतसूत्र की भूमिका का वर्णन कीजिए।
4. गृह्यसूत्र क्या है? किन्हीं दो गृह्यसूत्रों के नाम लिखिए।
5. धर्मसूत्र को विस्तारपूर्वक समझाइए।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY